शिक्षा में स्नातक (बी0एड0)
Bachelor of Education (B.Ed)

भाग – 2

Part - II

पत्र – सत्तरहवाँ

Paper - XVII A

कला शिक्षा
Art Education

Nalanda Open University

(A State Open University)

Course Design and Preparation Team

Original Text Written by :

1. **Prof (Dr.) Preeti Sinha**
Coordinator,
School of Teacher Education,
NOU, Patna
Unit - 1

2. **Dr. Meena Kumari**
Assistant Professor,
School of Teacher Education,
NOU, Patna
Unit - 13

3. **Dr. Sangeeta Kumari**
Assistant Professor,
School of Teacher Education,
NOU, Patna
Unit - 14

4. **Dr. Pallavi**
Assistant Professor,
School of Teacher
Education, NOU, Patna
Unit - 12

5. **Preeti Kumari**
Assistant Professor,
Islamia Teacher's
Training College,
Phulwarisharif
Unit - 2,3,5,8,9,10,11

6. **Dr. Manjulla**
Assistant Professor,
Islamia Teacher's
Training College,
Phulwarisharif
Unit - 4, 6, 7

Prof. (Dr.) Preeti Sinha
Co-ordinator
School of Teacher Education
Nalanda Open University, Patna

Published in November, 2019

© Nalanda Open University (Estd. 1987)

All rights reserved. No part of this book may be reproduced in any form by mimeography or any other means without permission in writing from the Nalanda Open University.

Further information regarding other courses of the Nalanda Open University may be obtained from the University Office at 3rd Floor, Biscomaun Bhawan, West Gandhi Maidan, Patna - 800 001.

शिक्षा में स्नातक (बी0एड0)
Bachelor of Education (B.Ed)

Part - II, Paper - XVII

CONTENTS

इकाई 1.	कला और सौंदर्यशास्त्र (Art and Aesthetics)	....	5 - 10
इकाई 2.	भारतीय कला एवं रास सिद्धान्त (Indian Art and Rasa Principle)	....	11 - 14
इकाई 3.	शिक्षा के माध्यम के रूप में कला (Art as a Medium of Education)	....	15 - 21
इकाई 4.	कला शिक्षा के एकीकरण सिद्धान्त के रूप में (Art as the Unifying Principle in Education)	....	22 - 28
इकाई 5.	कला और समाज (Art and Society)	....	29 - 33
इकाई 6.	कला और मानव विकास (Art and Human Development)	....	34 - 42
इकाई 7.	स्वअभिव्यक्ति के लिए कला (Art for Self Experssion)	....	43 - 48
इकाई 8.	दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला के विभिन्न रूप (Different forms of Visual & Performing Art)	....	49 - 64
इकाई 9.	शिक्षण एक कला के रूप में (Teaching as an Art)	....	65 - 71

इकाई 10.	नाटक शिक्षण के रूप में (Drama as a Form of Teaching)	....	72 - 79
इकाई 11.	कला के विभिन्न रूपों का आकलन (Assessing the Different Form of Arts)	....	80 - 89
इकाई 12.	रबीन्द्रनाथ ठाकुर (Rabindra Nath Thakur)	....	90 - 96
इकाई 13.	इलियट वेन ईस्नर (Elliot Wayne Eisner)	....	97 - 99
इकाई 14.	आनन्द केंटिस मुथु कुमारस्वामी (Anand Kentis Muthu Coomaraswamy)	....	100 - 107

इकाई : 1 कला और सौंदर्यशास्त्र
UNIT : 1 ART AND AESTHETICS

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

1.0 उद्देश्य **(Objective)**

1.1 प्रस्तावना **(Introduction)**

1.2 सौंदर्यशास्त्र–दर्शन की शाखा **(Aesthetics-Branch of Philosophy)**

1.3 सौंदर्यशास्त्र–अर्थ, आयाम एवं घटक **(Aesthetics-Meaning, Dimensions And Constituents)**

1.4 सारांश **(Summary)**

1.5 अभ्यास के प्रश्न **(Questions for Exercise)**

1.6 प्रस्तावित पाठ **(Suggested Readings)**

1.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- सौंदर्यशास्त्र का दर्शन की शाखा के रूप में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- सौंदर्यशास्त्र का अर्थ समझ सकेंगे,
- सौंदर्यशास्त्र के विभिन्न आयामों को जान सकेंगे,
- सौंदर्यशास्त्र के विभिन्न घटकों से अवगत हो सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

कला एवं सौंदर्यशास्त्र नामक इस इकाई से छात्रगण में सौंदर्यशास्त्र का दर्शन से संबंध की जानकारी प्राप्त होगी। साथ ही इस पाठ के द्वारा सौंदर्यशास्त्र की परिभाषा और उसके विभिन्न आयाम और घटकों को भी जान सकेंगे। शिक्षा में इसकी उपयोगिता से संबंध जोड़ना भी जरूरी है।

1.2 सौंदर्यशास्त्र–दर्शन की शाखा (Aesthetics-Branch of Philosophy)

दर्शन की तीन मूल शाखाएँ हैं। पहली शाखा तत्व मीमांसा (Metaphysics) है। यह प्राकृतिक घटनाओं की समझ से संबंधित है। सरल शब्दों में यह जगत (World), यर्थाथ (Reality) और अस्तित्व (Existence) की चर्चा करता है। इसके विचार विर्मश का क्षेत्र विश्व (World) स्व (Self) और ईश्वर (God) है।

इसकी दूसरी शाखा ज्ञान मीमांसा (Epistemology) है जिसका क्षेत्र ज्ञान की प्रकृति और ज्ञान प्राप्त करने के स्त्रोतों से है। हम किन किन तरीकों से ज्ञान प्राप्त करते हैं यह उसका विश्लेषण करता है।

मूल्य मीमांसा (Axiology) इसकी तीसरी शाखा है। यह मूल्यों का दार्शनिक अध्ययन है। इसे मूल्यों का सिद्धांत भी कहते हैं। यह मूल्यों की विवेचना से संबंधित है। इसकी उत्पत्ति ग्रीक शब्द Axios (meanig worth/worthy) अर्थात सुयोग्य और Logos (meaning reason/science/study) अर्थात तर्क/अध्ययन से हुआ है। मूल्य आत्मपरकता/व्यक्तिनिष्ठता (Subjectivity) का द्योतक है। दर्शन की यह शाखा हमारे चुनाव (Choice) को रेखांकित करती है। यह उन तत्वों पर बल देती है जो हमारी चाह (Desire), रूचि (Interest) पसंद (Choice) इत्यादि को प्रभावित करती है। यह दो प्रकार से मूल्यों का अध्ययन करती है – मूल्य (Value) और सौंदर्यशास्त्र (Aesthetics)। अतः इसी मूल्य मीमांसा की एक शाखा है सौन्दर्यशास्त्र।

सौंदर्यशास्त्र दर्शन की उस शाखा को कहते हैं जो आलोचनात्मक विश्लेषण और चिन्तन के द्वारा सृष्टि और सौन्दर्य की खोज करता है। यह कला की प्रकृति (Nature of Art) सुन्दरता (Beauty) एवं रसज्ञान (Taste) की सराहना एवं अभिमूल्यण करता है। इसे आत्मपरक (Subjective) एवं इन्द्रिय–संवेदना मूल्य (Sensori-emotional values) के अध्ययन के रूप में भी परिभाषित किया जाता है। विद्वानों ने इसकी व्यापक परिभाषा कला (Art), संस्कृति (Culture) एवं प्रकृति (Nature) की आलोचनात्मक चिंतन से दिया है। ऑक्सफोर्ड शब्दकोष (Oxford Dictionary) इसे सौन्दर्य संबंधित या सौन्दर्य की प्रशंसा तथा सौन्दर्य के माध्यम से आन्नद (Pleasure) माना है।

सौन्दर्यशास्त्र (Aesthetics) की उत्पत्ति ग्रीक शब्द Aistehetikos (meaning sensitive, pertarining to same perception) अर्थात संवेदनशील, इन्द्रियबोध संबंधित से हुआ है। दूसरे शब्दों में यह अनुभव (Perceice) करने, महसूस (Feel) करने, इन्द्रियबोध (Sense) से जुड़ा हुआ है। कला, सुन्दरता और सही परख सौंदर्यशास्त्र की प्रकृति है। संस्कृति, प्रकृति और आलोचनात्मक चिंतन भी इसका एक स्वरूप है। व्यापक शब्दों में कोई भी वस्तु कैसे सुन्दर (Beautiful), अवर्णनीय (Subline), घृणास्पद (Disgusting) आमोदजनक (Fun) आकर्षक (Cute), मूर्खतापूर्ण (Silly), रोचक (Entertaining), आडंबरी (Pretentious), असंगत (Discordant), सुमेल (Harmonious), उबाऊ (Boring), विनोदपूर्ण

(Humorous) या दुःखद (Tragic) है की व्याख्या करता है।

सुंदरता के निर्णय में सभी शामिल है – इंद्रियाँ (Senses), संवेदना (Emotions) और बुद्धि (Intellect)। इमेन्यूल कान्त (Iammanual Kant) के अनुसार सुंदरता निष्पक्ष (Objective) और सार्वभौमिक (Universal) है। जैसे कुछ वस्तु सबों के लिए सुन्दर है। स्वाद (Taste) की सुन्दरता आत्मपरक (Subjective) है। इसमें वर्ग, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य और शिक्षा के आधार पर विविधता होती है। जैसे निरामिष, सामिष (Vegetarian, Nonvegetarian)। सौन्दर्यपरक निर्णय संस्कृति अनुकुलित भी हो सकता है और समयानुसार बदल भी सकता है। जैसे अफ्रीकी देश में गोरा रंग सुंदरता का प्रतीक नहीं होगा (संस्कृति अनुकूलित)। भारत में पहले गोरारंग सुंदरता का मानक था पर समय के साथ बदलाव आ गया। मूल्यपरक सौन्दर्य का निर्णय आर्थिक, राजनैतिक और मूल्य आश्रित हो सकता है। जैसे किसी के लिए मंहगी गाड़ी प्रतिष्ठा का प्रतीक (Status symbol) हो सकती है पर किसी के लिए राजनैतिक एवं नैतिक आधार पर अपमानजनक हो सकता है।

इन्द्रियों की संवेदनशीलता पर सौन्दर्यशास्त्र आश्रित है और इसी आधार पर कला और सौन्दर्य का निर्धारण और निश्चय होता है। पारंपरिक दर्शन में प्लेटो ने सौन्दर्य को समानुपात (Proportion), अनुरूपता (Harmony) और एकात्मकता (Unity) से जोड़ने में रूचि दिखलाई। अरस्तु ने सौन्दर्य के सार्वभौम तत्वों क्रम (Order), संतुलन (Symmetry) और निश्चितता (Definitness) को केन्द्र माना।

ऐतिहासिक परिदृश्य में विभिन्न संस्कृति में सौन्दर्यशास्त्र भिन्न भिन्न रूप में प्रदर्शित हुआ। मध्यकाल में यूरोप चर्च से अत्यधिक प्रभावित था, अतः विचार भी धार्मिक थे और कला आदि पर भी धर्म का ही वर्चस्व था। पुनर्जागरण काल ने पुनः यूनानी और रोमन कला के विचार के प्रभाव हावी हो गए। यह काल ईश्वर के साथ साथ व्यक्ति के महत्व को भी अपने कला में समेट लिया। पूरब में कन्फूशियस ने मत दिया कि कला और संगीत मानव प्रकृति को व्यापकता प्रदान करती है। भारतीय कला पर आध्यात्मिकता हावी थी। इस्लाम के अनुसार अल्लाह के कार्य की तुलना में मानव के कला के कार्य में अन्तर्निहित त्रुटि है। पशु या मनुष्य के सजीव चित्रण की कोशिश अल्लाह के प्रति धृष्टता है। इन्हीं कारणों से इस्लामिक कला पच्चीकारी (Mosaics), सुलेख (Calligraphy), वास्तुशिल्प (Architecture), ज्यामितीय (Geometric), और वनस्पतीय (Floral) आकृति तक सीमित हो गई।

एक दर्शन के रूप में सौन्दर्यशास्त्र की उत्पत्ति अठारहवीं सदी में माना जाता है। जोसेफ एडीसन ने सर्वप्रथम 1712 में एक लेख लिखकर (The Pleasures of Imagination) इस ओर ध्यान आकर्षित किया। समझा जाता है कि यही सौन्दर्यशास्त्र के प्रादुर्भाव का काल है। अवकाश क्रियाएँ/मनोरंजन (Leisure activities) आठारहवीं सदी में प्रचलित हुई और सौन्दर्यशास्त्र के क्षेत्र का भी विस्तार हुआ।

1.3 सौंदर्यशास्त्र–अर्थ, आयाम एवं घटक (Aesthetics-Meaning, Dimensions and Constituents)

सौंदर्यशास्त्र अर्थ (Aesthetics Meaning) – सौंन्दर्यशास्त्र कला, संस्कृति और प्रकृति का आलोचनात्मक चिन्तन है। कला, सुन्दरता और सही परख सौन्दर्यशास्त्र की प्रकृति है। अमेरिकी दार्शनिक डेनिस डटन

(Denis Dutton 1944) ने मानव सौन्दर्यशास्त्र के सात सार्वभौम संकेतक की पहचान की थी। ये सातों सौन्दर्यशास्त्र पर सोच–विचार हेतु उपयोगी प्रारंभिक बिन्दु हैं हाँलाकि इनपर आपत्ति और विरोध भी है। इन बिन्दुओं का वर्णन निम्नलिखित है :–

1) दक्षता या कला मर्मज्ञता **(Expertise or Virtuosity)** – कलात्मक कौशल सृजनात्मक **(Cultivated)** है, इसकी पहचान **(Recognised)** है और सराहा **(Admired)** जाता है।
2) अनुपयोगी आमोद–प्रमोद **(Non-Utilitarian Pleasure)** – व्यक्ति कला का कला की खातिर आनन्द उठाता है, किसी व्यवहारिक मूल्य की मांग नहीं करता।
3) शैली **(Style)** – बनावट **(Composition)** के नियमों का ध्यान रखता है जो उसे स्वीकार योग्य शैली **(Recognizable Style)** का दर्जा **(Place)** प्रदान करता है।
4) आलोचना **(Criticism)** – व्यक्ति कला की वस्तु का आंकलन **(Judging)** करता है, प्रशंसा **(Appriciate)** करता है और उसकी व्याख्या **(Interpret)** करता है।
5) अनुकृति **(Imitation)** – कुछ अपवादों को छोड़ (जैसे संगीत, अमूर्त कला) कला के कार्य/वस्तु दुनिया से प्राप्त अनुभवों का अनुकरण है।
6) विशेष केन्द्रण **(Special Focus)** – कला सामान्य जीवन को एक ओर रख, अनुभवों का नाटकीय प्रस्तुति भी करता है।
7) कल्पना **(Imagination)** – रंगमंच पर कलाकार और दर्शक परिकल्पित दुनिया में चित्र को प्रसन्न करते हैं।

आज के परिप्रेक्ष्य में इसे संपूर्ण नहीं कहा जा सकता। कला के अनेक नवीन क्षेत्र शामिल हो गए हैं जिनकी चर्चा आगे की जा रही है।

1.3.1.सौंदर्यशास्त्र के आयाम (Aesthetics Dimensions) – वी वेची के अनुसार – सौंदर्यशास्त्र आयाम समानुभूति की प्रक्रिया है जो स्व को वस्तु से और वस्तुओं को एक दूसरे से जोड़ती है। यह उत्तमता की अभिलाषा है जो हमें एक शब्द के ऊपर दूसरे, एक रंग, एक निश्चित गान का भाग, एक गणित का सूत्र या भोजन का स्वाद चयन करने पर बाध्य करता है। यह किए गए कार्यों के प्रति सावधानी एवं ध्यान देने की प्रवृत्ति है, अर्थ पाने की चाह है; यह उत्सुकता और आश्चर्य है; यह उदासीनता और असावधानी के विपरीत है।

(According to Vea Vechhi, aesthetic dimension is a process of empathy relating to self to things and things to each other,... it is an aspiration to quality that makes us choose one word over another, a colour or shade, a certain piece of music, a mathematical formula or the taste of food... It is an attitude of care and attention for the things we do, a desire for meaning, it is curiosity and wonder; it is the opposite of indifference and carelessness...)

सौन्दर्य का बोध हमारे सभी इंन्द्रियों में है। इसे हम चार मुख्य श्रेणियों में पाते हैं।

1) दृष्टि (Vision) के मूल अवयव रंग (Colour), आकार (Shape), सांचा (Pattern), रेखा (Line), बनावट (Texture), भार (Weight), संतुलन (Balance), अनुपात (Scale), सान्निध्य

(Proximity) और गति (Movement) हैं। इनके उपयोग से अच्छे आलौकिक सौन्दर्य की उपलब्धि होगी।

2) श्रवण (Hearing) के मूल अवयव हैं आवाज की प्रबलता (Foudness), स्वरमान (Pitch), ताल (Beat), दुहराव (Repetition), धुन (Melody), स्वस्प (Pattern) और शोर (Noise)। इनका प्रयोग कर आनन्दायक संगीत का सृजन होगा।
3) स्पर्श (Touch) के मूल अवयव हैं बनावट (Texture), आकार (Shape), भार (Weight), आराम (Comfort), तापांश (Temperature), स्पंदन (Vibration) और तीक्ष्णता (Sharpness)। इन तत्वों के उपयोग से आकर्षक और आरामदायक वस्तु निर्मित होगी।
4) स्वाद और गंध (Taste and Smell) के मूल अवयव हैं तीव्रता (Strength), मिठास (Sweetness), अम्लता (Sourness) और मिलावट (Texture)। इन्हीं तत्वों के द्वारा स्वाद और गंध का निर्णय होता है।

सौन्दर्यशास्त्र बुद्धि और मनोभाव, बोध और इन्द्रिय अनुभव, विश्लेषण और सहजज्ञान के मेल द्वारा किसी भी वस्तु की पूर्ण समझ देता है।

1.3.2. सौंदर्यशास्त्र के घटक(Constituents of Aesthetics) – सौन्दर्यशास्त्र की वैज्ञानिक परिभाषा इन्द्रिय (Sensory) या इन्द्रिय सवेदना (Sensory-emotional) मूल्य (Value) का अध्ययन है। विद्वान इसे कभी कभी (Sentiment) और अभिरूचि (Taste) का निर्णय (Judgement) भी कहते हैं। सौन्दर्यशास्त्र के ज्ञाता इसे व्यापक रूप में कला (Art), संस्कृति (Culture) एवं प्रकृति (Nature) का आलोचनात्मक चिन्तन (Critical reflection) कह कर परिभाषित करते हैं। इसके अनेक घटक हैं जिसे निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत किया गया है –

1.3.2.1. प्रदर्शन कला (Performing Arts) – इसके अधीन वैसी कला आती है जिसे दर्शकों के समक्ष कलाकार प्रस्तुत (प्रदर्शन) करते हैं। ये प्रस्तुति कलाकार के मनोभाव (Emotions), अभिव्यक्ति (Expressions) और भावना (Feelings) की व्याख्या में सहायक है। इसके अन्तर्गत अभिनेता (Actor), हास्य अभिनेता (Comedians), नर्त्तक (Dancers), संगीतज्ञ (Musicians), गायक (Singers), सर्कस के कलाकार (Circus artists), जादूगर (Magicians) आदि हैं। संगीत (Music), नाट्यकला (Theatre), नृत्य (Dance), चलचित्र (Films) प्रदर्शन कला (Performing arts) है।

1.3.2.2. दृश्य कला (Visual Arts) – इसका मुख्य केन्द्रबिन्दु प्रकृति के दृश्यों की रचना है। चित्रकला (Painting), रेखाचित्र (Drawing), दृष्टांत (Illustration), वास्तुकला (Architecture), छायाचित्र (Photography), रेखांकित खाका (Grahic Design), साहित्य (Literature), छापने का कार्य (Printmaking), आंतरिक सज्जा (Interior Design), चलचित्र निर्माण कला (Filmmaking) और अन्तरजाल कला (Internet art) ये सभी इसमें शामिल हैं।

1.3.2.3. प्लास्टिक कला (Plastic Arts) – मूर्त्तिकला (Sculpture), मिट्टी का बर्त्तन बनाने की कला (Ceremics) आदि जिसमें ढालने का कार्य सम्मिलित है प्लास्टिक कला से उल्लिखित (Referred) किया जाता है।

क्रिया (Activity), अनुभूति (Perception) और प्रज्ञ सोच (Intelligent Thought) ये सभी पहल सौन्दर्यशास्त्र के गुण है। अतः सौन्दर्यशास्त्र की शिक्षा शिक्षार्थी को दिन प्रतिदिन के अनुभवों को देखने, सुनने, गतिमान करने, दर्शाने में नवीन दिशा की खोज करने में मददगार होगा।

1.4 सारांश (Summary)

इस पाठ के माध्यम से सौन्दर्यशास्त्र की परिभाषा की जानकारी मिली। सौन्दर्यशास्त्र कला, संस्कृति और प्रकृति पर आलोचनात्मक चिन्तन है। इसका संबंध मनोभाव और अभिरूचि से है। यह व्यक्ति विशेष के अभिरूचि का निर्णनायक है। इसके विभिन्न आयाम है जो किसी भी वस्तु को स्वरूप देता है और व्यक्ति रसज्ञान के अनुसार निर्णय लेता है। इसके अनेक घटक है जिनकों विभिन्न श्रेणियों में विभक्त किया गया है।

1.5 अभ्यास के प्रश्न (Questions for exercise)

(1) सौन्दर्यशास्त्र को परिभाषित करें। इसके कौन–कौन से आयाम है?
Define aesthetics. What are its dimensions?

(2) सौन्दर्यशास्त्र क्या है? इसके कौन–कौन से घटक हैं?
What is aesthetics? What are its constituents?

1.6 प्रस्तावित पाठ (Suggested readings) (Web)

- Aesthetics - By Branch/Doctrine - The Basics of Philosophy
- What is Aesthetics in Philosophy? - Definition & History Study.com
- Benefits of an Aesthetics Education/Doance University. them
- Austratian Journal of Teacher Education, Vol.38/Issue 10 Incorporating the Aesthetic Dimension into Pedagogy
- Aesthetics dimensions in learning and education - E L C
- Aesthetics dimension - definition - English. htm
- Introducation to the Psychology of Aesthetics. htm
- Design Principle: Aesthetics - UX Collective. htm
- The 7 Elements of Unity Components of Design. htm
- Aesthetics and Visual Composition: Mart 101 L

❒ ❒ ❒

इकाई : 2 भारतीय कला एवं रास सिद्धान्त
Unit : 2 Indian Art and Rasa Principle

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

2.0 उद्देश्य (Objective)
2.1 प्रस्तावना (Introduction)
2.2 भारतीय कला की परिभाषा और चरण
(Definition of Indian Art and its Stages)
2.3 रास सिद्धान्त (Rasa Principle)
2.4 सारांश (Summary)
2.5 अभ्यास के प्रश्न (Question for exercise)
2.6 प्रस्तावित पाठ (Suggested readings)

2.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- भारतीय कला की परिभाषा जान सकेंगे।
- विभिन्न काल में इसके चरण से अवगत हो सकेंगे।
- रास सिद्धान्त को समझ सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

2.1प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय कला एवं रास सिद्धांत नामक इस इकाई में भारतीय कला की चर्चा की गई है। कला के इतिहास की भी चर्चा की गई है। रास सिद्धान्त की उत्पत्ति एवं विभिन्न रास की चर्चा विस्तारपूर्वक की गई है। साथ ही

भारत की पारंपरिक एवं क्षेत्रीय कला की भी चर्चा विस्तारपूर्वक की गई है।

2.2 भारतीय कला की परिभाषा और चरण (Definition of Indian Art and its Stages)

कला (Art) – संस्कृत के विद्वानों के अनुसार कला का मूल शब्द कल है जिसका अर्थ है सुन्दर (Beautiful), कोमल (Soft), मधुर (Sweet) या जो प्रसन्नता/खुशी (Pleasure) प्रदान करता है। सर्वप्रथम (1st Century A.D.) इस शब्द का प्रयोग भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में किया था। भरत मुनि के श्लोक के अनुसार गाना, बजाना, नृत्य आदि इस शब्द का द्योतक है। पंडित भोलानाथ तिवारी के अनुसार इस शब्द का प्रयोग लधुकला (Fine arts) और शिल्पकला (Useful arts) दोनों के लिए ही किया गया है। पाणिनी (Panini) के अष्टअध्याय में शिल्प का प्रयोग लधु और उपयोगी दोनों ही कला के लिए किया गया है। अतः नाट्यशास्त्र के उद्‌भव के पहले सामान्य रूप में शिल्प का अर्थ दोनों ही था।

आर्ट (Art) लेटिन (Latin) शब्द Ars or Artem से उत्पन्न हुआ है। इसका मूल शब्द Ar है जिसका अर्थ है उत्पन्न करना (To produce) सृजन करना (To create) व्यवहारिक कौशल (Practical Skill) हस्तकाल (Craft) आदि। यूनानी शब्द Artizein तैयार करना (To prepare) है। प्राचीन आंग्ल भाषा में Eart, और मध्यकाल आंग्ल भाषा में Art का प्रयोग हुआ। पुर्नजागरण काल के दो शताब्दी बाद (1660) से Art का आधुनिक अर्थ में प्रयोग किया जा रहा है।

प्लेटो (Plato) के अनुसार कला सत्य का प्रतिमान है।

Art is the imitation of truth.

रस्किन (Ruskin) के अनुसार यह ईश्वर के कृति के प्रति मानव की आनंद/खुशी है।

It is mans delight towards the creation of God.

कुछ विद्वानों के कला को प्रभाव की अभिव्यक्ति कहा है।

Expression of Impression.

भारतीय कला की उत्पत्ति पाँच हजार वर्ष पूर्व हुई। समय के साथ–साथ संस्कृति के प्रभाव से इसमें परिवर्तन आया और यह विविधता से पूर्ण हो गया। भारतीय इतिहास के चार चरण है जिसमें कला को प्रभावित किया और उस काल की संस्कृति, धर्म एवं राजनीति के विकास को प्रतिबिम्बित किया। अति प्राचीन भारतीय कला गुफाओं में दिखती है। भीम बैठक गुफा चित्रकारी इसका उदाहरण है। एक सामान्य चीज जो सभी गुफा चित्रकारी में पाई जाती है गेरू का उपयोग (Powdered mineral a form of Iron Oxide hematite)। ये लाल रंग से की गई चित्रकारी मानव, पशु, शिकार, पत्थर के औजार को दर्शाता है।

भारतीय कला अपनी मूर्त्ति कला के लिए उल्लेखनीय है। सिन्धु सम्यता (500 - 1500 B.C.E.) से ही पत्थर और धातु की मूर्त्ति बनाई जाती थी जो भारतीय मौसम के थपेड़ों को सह कर बची रही। धातु संकचन (Metalcasting) का नमूना है सिन्धु घाटी की नृत्यांगना।

मौर्य काल (322 BCE - 185 BCE) की कला में लकड़ी का भरपूर प्रयोग हुआ साथ ही साथ पत्थरों से स्मारक कला (Monumental) का भी उद्‌भव हुआ।

गुप्तकाल (320 CE - 550 CE) उत्तर भारतीय कला का उत्कृष्ट शिखर था। चित्रकला का भी विस्तृत प्रचार था लेकिन बचे हुए अवशेष ज्यादातर धार्मिक मूर्त्तिकला के ही नमूने है। चित्रकला में लधु चित्र (Miniature painting) और भित्ति चित्र (Mural painting) भी था।

दक्षिण में (3rd Century - C. 1300 CE) मंदिरों और मूर्त्तियों का बड़े पैमाने पर निर्माण हुआ।

मध्यकाल (C 1400 CE - C1800 CE) में इस्लाम का प्रभाव दिखने लगा। ये वास्तुकला के साथ–साथ ललित

कला के भी प्रशंसक थे। चित्रकला का अत्यधिक विकास हुआ। चित्रकला पर फारस की शैली (Persian style) का प्रभाव था। उत्तर भारत में काँगड़ा (Kangra school) और पहाड़ी (Pahari style) शैली भी खूब प्रचलित थी।

स्वतंत्रतापूर्व भारतीय कला पर यूरोपीय प्रभाव था। यूरोपीय और भारतीय कला का सम्मिश्रण भी देखा गया। स्वतंत्रता बाद (C.1900 CE) की समकालीन कला आज भी प्रचलित है। भारत कला और हस्तकला का देश है। यह पारंपरिक कला और हस्तकला के देश के रूप में चित्रित है। प्रत्येक क्षेत्र की कुछ न कुछ खासियत है। एक अलग पहचान है जो क्षेत्रीय कला के माध्यम से अभिव्यक्त की गई है जिसे लोक कला (Follcant) कहा गया। साथ ही जनजाति (Tribal Art) कला भी विकसित हुई। ये अति प्राचीन काल से कायम हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी आज भी प्रयोग में हैं। बिहार भी ऐसी कला का केन्द्र है और इनके उदाहरण हैं मंजूषा चित्र कला या अंगिका कला, मिथिला या मधुबनी चित्रकला, टिकुलीकला, पटनाकलाम जिसे कंपनी चित्रकला भी कहते हैं। बंगाल का कालीघाट चित्रकला, महाराष्ट्र का वर्ली चित्रकला, राजस्थान का लधु चित्रकला और केरला का कलमकला आदि। अन्य क्षेत्रों में भी विकास हुए जैसे कच्छ (राजस्थान) का रोघन चित्रकला, बस्तर का ढोकरा हस्तकला, उड़ीसा का पटचित्र, आँध्रप्रदेश का निर्मल चित्रकला। लोक कला में केवल चित्रकला ही नहीं आता है। व्यापक रूप से इसमें घर सज्जा, कपड़ा बनाना, मिट्टी के बर्त्तन बनाना, आभूषण बनाना सभी आता है। कढ़ाई में पारसी कला, टोडा जनजाजि की कला, पटोला बुनाई सब अपने आप में खूबसूरत नमूना है।

2.3 रास का सिद्धान्त (Rasa Principle)

संस्कृत शब्द रस से आया है जिसका अर्थ है रस, सार या स्वाद/रसज्ञान (Taste)। यह भारतीय कला में उस अवबोध की ओर संकेत करता है जो किसी भी सौन्दर्य रस, दृश्य, साहित्य या संगीत के प्रति दर्शकों में एक भावना जागृत करता है जिसका वर्णन संभव नहीं। रास सिद्धान्त का उल्लेख प्राचीन संस्कृत नाट्य शास्त्र में भरत मुनि के द्वारा किया गया। कश्मीर के दार्शनिक अभिनव गुप्त (C 1000 CE) ने नाटक, गीत संगीत और अन्य प्रदर्शित कला में भी वर्णन प्रस्तुत किया है।

रास शब्द प्राचीन वैदिक साहित्य में भी उल्लेखित है। रिग (Rig) वेद में इसे तरल, निचोड़ और रंग के अर्थ में प्रस्तुत किया गया। अर्थवेद में इसका अर्थ स्वाद, अन्न का अर्क है। उपनिष्द् में सार, प्रकाशयुक्त चेतना (Self-luminors comes ciousnern), (Quintessence) सारतत्व, और कभी – कभी रसज्ञान (Taste) भी कहा गया है। उत्तर वैदिक साहित्य में इसको निचोड़ (Extract), सार (Essence), रस (Juice) या स्वादिष्टतरल पदार्थ (Tasty liquid) के रूप में ही सम्बोधित किया गया है।

(Bharat Muni's natya Shastra (200 B.C.E. - 200 C.E.) explains that)

भरत मुनि का नाट्य शास्त्र (200 B.C.E. - 200 C.E) रस की व्याख्या करते हुए कहता है कि रस उत्पत्ति विभाव (Determinants), अनुभाव (Anubhava) और व्यभिचारीभाव (Transitory states) के संयोग से उत्पन्न होता है। रास सिद्धान्त के अनुसार विशुद्ध सौन्दर्य अनुभव की प्रकृति लोकोत्तर (Transacentental) है। इस आनन्द का श्रोत दिव्य (Divine) है।

स्थायीभाव (Emotional modes) नौ रस से अभिव्यक्त होता है।

1) श्रृंगार रस का संबंध प्रेम (Love) और काम (Eros) से है।
2) हास्य रस का संबंध हास्य (Humour) से है।
3) बीभत्स रस का संबंध (Pathetic, disgust) करूणा, असंतोष/अरूचि/नाराजगी से है।
4) रौद्र रस का संबंध (Anger, Fury) क्रोध, आवेश, रोष से है।
5) कारूण्य रस का संबंध (Compassion, sympathy) दया, करूणा, सहानुभूति से है।
6) वीर रस का संबंध (Heroic) वीरता से है।
7) भयानक रस का संबंध (terrible, horrifying) डरावना, दारूण, भयावह से है।

8) अदभुत रस का संबंध (Marvellous, amazing) अनोखा, आश्चर्यजनक, विस्मयकारी से है।

9) साम या शांत रस का संबंध (Serenity) धीरता, स्थिरता, शुद्धता से है।

रस दर्शकों को आन्नद और हर्ष के अनुभव से भावनाओं की पराकाष्ठा तक पहुँचाता है। रास सिद्धान्त दर्शकों को असीम परम सुख दे सकता है।

2.4 सारांश (Summary)

इस पाठ के माध्यम से भारतीय कला की विशेषताओं की जानकारी मिली। भारत के लोककला के भी विभिन्न कला के नामों से परिचित हुए। रास सिद्धान्त के नौ रस के नामों का भी ज्ञान हुआ और ये नौ रस किन–किन भावों की अभिव्यक्ति करते है यह भी जानकारी प्राप्त हुआ।

2.5 अभ्यास के प्रशन (Questions for exercise)

1. कला शव्द की उत्पत्ति कैसे हुई है?
   How was the word kala born?
2. प्रत्येक काल की कला की क्या विशेषता थी?
   What was the charecteristic of art in different periods?
3. रास सिद्धान्त का वर्णन करें।
   Describe the rasa principle.

2.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested readings)

1. Chadha D.S. : Classroom Management-Teaching and Techniques, Mittal Publication, New Delhi, ISBN - 81-8324-683-4
2. Deb Kajal : Congnitive Development in Classroom, Adhyayan Publication & Distributors, New Delhi, ISBN - 81-8435-041-4
3. Jena SPK : Behaviour Terapy, Techniques, Research and Application, Sage Publications India Pvt. Ltd., ISBN - 978-0-7619-3624-4

❒ ❒ ❒

इकाई : 3 शिक्षा के माध्यम के रूप में कला
Unit : 3 Art as A Medium of Education

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

3.0 उद्देश्य (Objective)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

3.2 कला का अर्थ (Meaning of Art)

3.3 कला के विभिन्न आयाम एवं शिक्षा में इसकी उपयोगिता (Different Dimensions of Art and its Utility in Education)

3.4 कला और शिक्षा के बीच सम्बन्ध (Relationship Between Art and Education)

3.5 शिक्षा के माध्यम के रूप में कला (Art in the form of Education)

3.6 सारांश (Summary)

3.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Excercise)

3.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

3.0 उद्देश्य(Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में कला के अर्थ को समझ सकेंगे।
- कला और शिक्षा के संबंध की व्याख्या कर सकेंगे।
- कला के विभिन्न आयाम और शिक्षा में उसकी उपयोगिता को समझ सकेंगे।
- कला के माध्यम से शिक्षा को समझ सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस इकाई का उद्देश्य है।

3.1 प्रस्तावना(Introduction)

शिक्षा के माध्यम के रूप में कला नामक इस इकाई में विद्यार्थियों को यह बताया गया है कि कला क्या है? शिक्षा के सशक्त माध्यम में कला की भूमिका क्या है? बालकों के अपरिपक्व मस्तिष्क एवं कोमल हृदय में कला द्वारा जटिल विषय को सरलता से अंकित किया जा सकता है। कला के विभिन्न आयामों से विद्यार्थियों को अवगत कराया गया है। बालकों का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व संवेगात्मक स्तर पर स्वस्थ व पूर्ण विकास तभी संभव है जब कला का उपयोग शिक्षा के माध्यम से हो। इस इकाई के माध्यम से कला–कौशल की क्षमता को उभारने और उसके उपयोग में बालकों की मदद कर सकेगा।

3.2 कला का अर्थ (Meaning of Art)

"कला" शब्द का पाश्चात्य अर्थ आर्ट (Art) है, यह लैटिन भाषा के आर्स (Arc) शब्द से बना है, यह ग्रीक के Texven शब्द का रूपांतर है। इस शब्द का प्राचीन अर्थ शिल्प (Craft) अथवा क्षैपुण्य विशेष है। प्राचीन भारतीय मान्यताओं में भी कला के लिए शिल्प और कलाकार के लिए शिल्पी शब्द का प्रयोग मिलता है। कला शब्द इतना व्यापक है कि विभिन्न विद्वानों की परिभाषाएँ एक विशेष पक्ष को छूकर रह जाती है। कला का अर्थ अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है यद्यपि इसकी अनेकों परिभाषाएँ दी गई है। कला के अर्थ को समझने के लिए उसकी संभावनाओं को समझना आवश्यक है। कला मानव मस्तिष्क की सबसे ऊँची और प्रखर कल्पना है। कला मानव हृदय में सुखद भाव एवं अर्थपूर्ण अनुभूतियाँ उत्पन्न करती है। मानव इन्द्रियों और मन को आनन्द प्रदान करती है।

भारतीय परम्परा के अनुसार कला उन सारी क्रियाओं को कहते हैं जिनमें कौशल अपेक्षित हो। यूरोपीय शास्त्रियों ने भी कला में कौशल को महत्वपूर्ण माना है। कला एक प्रकार का कृत्रिम निर्माण है जिसमें शारीरिक और मानसिक कौशलों का प्रयोग होता है। "मैथिली शरण गुप्त" के शब्दों में "अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति हीं तो कला है" (साकेत, पंचम सर्ग) दूसरे शब्दों में "मन के अंतःकरण की सुन्दर प्रस्तुति हीं कला है।" कवि रवीन्द्र टैगोर के अनुसार "जो सत् है, जो सुन्दर है वही कला है।" शिक्षा शास्त्री प्लेटों के अनुसार "कला प्रकृति सत्य की अनुकृति की अनुकृति है।" शिक्षा शास्त्री अरस्तु के अनुसार "कला प्रकृति सौन्दर्यमय अनुभवों का अनुकरण है।" मनोवैज्ञानिक "फ्रायड" के अनुसार "दमित वासनाओं का उभरा हुआ रूप ही कला है।"

भारत में कला को योग साधना माना गया है। कला हमारे विचारों का एक दृश्य रूप है, जिसमें तीन योग्यताएँ सन्निहित है – कल्पना शक्ति, आदर्श प्रियता और सृजनात्मकता। यदि कला के संदर्भ में इतिहास को पल्टा जाय तो यह स्पष्ट होता है कि कला का अर्थ उसके प्रभाव में निहित होता है। इसी प्रभाव के कारण कला का उपयोग शिक्षा में किया जाता है। पठन–पाठन के दौरान कला का सकरात्मक प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है। अतः विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर यह कह सकते है कि कला मानव ह्यदय में पलने वाली एक अनुभूति है जो बाह्य रूप में आकर मनुष्य को शीतलता प्रदान करती है।

3.3 कला के विभिन्न आयाम एवं शिक्षा में इसकी उपयोगिता (Different Dimension of Art and its Utility in Education)

कला का वर्गीकरण (Classification of Arts) कला को मुख्य रूप से निम्नलिखित चित्रण Flow Sheet or, Diagram द्वारा वर्णन इस प्रकार कर रहे हैं।

कला (Art)

- दृश्य कलाएँ (Visual Art)
  - चित्रकला (Painting)
  - मूर्तिकला (Sculpture)
  - वास्तुकला (Architecture)
- प्रदर्शनकारी कलाएँ (Performing Art)
  - काव्य कला (Poetry)
  - संगीत (Music)

दृश्य कलाएँ (Visual Art)

चित्रकला (Painting) – समस्त शिल्पों और कलाओं में प्रधान तथा सर्वप्रिय चित्रकला को माना गया है। चित्रकला भौतिक, दैविक एवं आध्यात्मिक भावना का समन्वित रूप की अभिव्यक्ति है।

चित्रकला में रेखा, वर्ण, वर्तना एवं अलंकरण की सहायता से चित्र का स्वरूप निष्पादित होता है। समान्य रूप में प्राचीन काल में तीन प्रकार के चित्र बनते थे। भित्ति पटल, पटचित्र और फलक चित्र। आधुनिक चित्रकला में चेतना कला का स्थान प्रमुख है। आधुनिक चित्रकार कल्पना में पूर्ण विश्वास रखता है। भारत में अमृता शेरगिल, रवीन्द्रनाथ टैगोर, राजा, सूजा हलधर, यामिनीराय, एम एफ हुसैन, सतीश गुजराल आदि प्रमुख है।

मूर्तिकला (Sculpture) – भारत में मूर्तिकला को अत्यन्त प्रतिष्ठित माना गया है। भारतीय मूर्तिकला की अद्भूत कला को देखकर सारा विश्व मंत्रमुग्ध है। मंदिरों में निर्मित मूर्तिकला अलग–अलग शासन काल और अलग–अलग सभ्यता संस्कृति से हमें अवगत कराती है। मूर्तिकार, मिट्टी, पत्थर प्लास्टर ऑफ पेरिस, धातु, लकड़ी, नारियल पर मूर्ति बनाकर उन्हें सजाकर रंग भर कर उन्हें ऐसा बना देता है कि मानों वह सजीव खड़ा हो।

तंजाऊर के मन्दीश्वर स्वामी के मंदिर की गणेश मूर्ति मनल्लूर के विष्णु मंदिर की रति व कामदेव की मूर्ति आदि कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

भारतीय मूर्तिकला के तीन प्रमुख प्रयोजन हैं– धार्मिक, स्मारक और अलंकरण। आधुनिक भारतीय मूर्तिकारों में देवी प्रसाद रामचौधरी, राखो चौधरी, धनराज भगत और राम किंकर का नाम आता है।

वास्तुकला (Architecture) – वास्तुकला का साधारण अर्थ है उन भवनों की निमार्णकला जहाँ निवास किया जाता है। सुनियोजित नगर निवेश, पक्की ईटों के बने सार्वजनिक एवं निजी सड़कें, जल निकास की नालियाँ, सिन्धु सभ्यता की वास्तुकला के महत्वपूर्ण उदाहरण है।

प्रमुख शास्त्रकारों नें वास्तु की तीन आकार शैलियाँ का उल्लेख किया हैं नागर (ब्रह्मा से सम्बंधित) द्रविड़ (विष्णु से सम्बंधित) और बेसर (महेश से सम्बंधित) अन्य कलाओं के भाँति इस कला का सम्बन्ध भी सौन्दर्य से है।

प्रदर्शनकारी कलाएँ (Performing Art)

काव्यकला (Poetry) – काव्य विचारों भावों का संप्रेषण है भिन्न–भिन्न समय कालों में विभिन्न वर्गों के कवियों में काव्य प्रेरणा के मूलाधार भिन्न–भिन्न होते हैं जैसे – ब्रह्म जाति और जगत के किसी दृश्य घटना, परिस्थिति या अवस्था का प्रभाव किसी अन्य व्यक्ति, आश्रयदाता, गुरू, आचार्य या मित्र की प्रेरणा, किसी विचार या जीवन दर्शन का अलौकिक प्रणय, विरह या शोक की अनुभूति।

संगीत कला (Music Art) – संगीत के विभिन्न आयाम हैं – गायन, वादन व नृत्य। गायन के क्षेत्र में तानसेन, बैजू से लेकर पंडित भीम सेन जोशी, पंडित जसराज के नाम विशिष्ट सम्मानीय है। वादन के क्षेत्र में अल्ला खाँ (तबला), रविशंकर (सितार), विस्मिल्लाह खाँ (शहनाई), हरिप्रसाद चौरसिया (बाँसुरी), रामनारायण (सांरगी) लाल मणि मिश्र (वीणा) आदि वादन क्षेत्र में प्रमुख है।

नृत्य के क्षेत्र में उदयशंकर बेले, गोपीकृष्णा (कत्थक), विरजू महाराज (कत्थक) मृणालिनी साराभाई (भरत नाट्यम्), केलुचरण महापात्र (ओडिसी) आदि अग्रणी कलाकार है।

3.4 कला और शिक्षा के बीच सम्बन्ध (Relationship Between Art and Education)

शिक्षा में कला – कला के विभिन्न आयामों को समझने के बाद शिक्षा में कला के स्थान और महत्व की विवेचना विविध और व्यापक परिदृश्य में करेंगे।

कला सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के उत्कर्ष की महत्वपूर्ण विधा है। विषय में सजीवता की अनुभूति को जागृत करने में कला विशिष्ट भूमिका निभाती है। कला के रानी विशिष्ट गुण के कारण विधालयी पाठ्यक्रमों में कला को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। पाठ्यपुस्तकों में मात्र तथ्यों और सूचनाओं का हीं संग्रह हो तो विषय वस्तु नीरस और उबाऊ हो जाता है। ऐसी स्थिति में शिक्षा बोधगम्य न हो कर बोझ बन जाता है। कला ऐसी स्थिति में माध्यम के रूप में एक संज्ञानात्मक समझ का विकास करता है। चित्रों के माध्यम से विषय वस्तु जिज्ञासा जगाते है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा 2005 में ऐसे पाठों की वकालत करती है जिनमें गति विधियाँ, चित्र, तस्वीरों, मानचित्रों कार्टूनों का समावेश हो, ये सब चीजें विषय वस्तु को रोचक तथा आनन्ददायक बना देते है।

बालक शैश्वावस्था से हीं चित्रों को देखकर वस्तुओं को पहचानता है। चित्रों के द्वारा अध्ययन कर विद्यार्थी विषयवस्तु की सरलता तथा स्पष्टता से सीखने में सक्षम होते हैं। चित्रों द्वारा शिक्षार्थी में रचनात्मक क्षमता सौन्दर्य बोध व आलोचनात्मक समझ विकसित होती है। चित्र विभिन्न उदीपनों के माध्यम से अस्पष्ट और अमूर्त तथ्यों को मूर्त यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर विषयवस्तु को बोधगम्य बनाता है। कथाशैली बच्चों में कहानी को सुनने के लिए एक विशेष आकर्षण पैदा करती है।

कला मूल्य परक शिक्षा का सशक्त उपागम है। कल अपने किसी भी रूप में शिक्षा को प्रभावित करती है। गीत–संगीत, नृत्य, चित्रकला, नाट्य आदि सभी कलाएँ मस्तिष्क पर छाप छोड़ती है। कला के माध्यम से शिक्षा का प्रभाव काफी गहरा होता है। विभिन्न कालों में एवं सभ्यताओं में कला शिक्षा के नैतिक मूल्यों के संवाहक के रूप में कार्य किया है। कला के रंग में डूबी हुई शिक्षा सिर्फ उपदेशपरक हीं नहीं होती है बल्कि संवेदनाओं से ओत–प्रोत होती है। मानवीय गुणों के विकास में कला सुगंध का कार्य करती है और शिक्षा के संप्रेषण को संवेदनशील बनाती है।

कला अनुभूति को जन्म देती है, अनुभूति वह मानसिक अवस्था है जिसके लिए पाठ्यक्रम, पाठ्यवस्तु संस्था के वातावरण से ऊर्जा वांछित है। कला ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजित करती है जिससे मस्तिष्क क्रियाशील होता है और विषय वस्तु की नीरसता को बहुत हद तक खत्म करता है। कला संवेदनाओं के माध्यम से बालक के व्यवहार को संशोधित और परिमार्जित करता है।

विद्यालयी शिक्षा के उद्देश्य बालक को सिर्फ पुस्तक ज्ञान देता हीं नहीं, अपितु उसे भविष्य में सामाजिक उत्तरदायित्व को वहन करने योग्य भी बनाना है। कला शिक्षा के क्षेत्र में एक उपयोगी उपागम है। यह बालक के मस्तिष्क को संवेदनशील बनाती है। संवेदनशीलता शिक्षा के सकरात्मक पक्ष को परिभार्जित करता है तथा व्यक्तित्व को खंडित होने से बचाता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि कला संगीतपूर्ण संबंध विकसित होने में सहायता करता है।

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण हमारी जो मूल धारणाएँ इच्छाएँ प्रवृत्तियों एवं प्रेरक तत्व होते हैं वही शिक्षा का उद्देश्य होता है क्योंकि इन्हीं के माध्यम से शैक्षिक प्रगति होती है। कला के माध्यम से ही बालक मन को हर समाज, हर देश की सभ्यता संस्कृति रूचि अनुभूति, जीवन दर्शन से परिचित कराया जा सकता है। कल्पनाशीलता कला को जन्म देता है; दूसरे शब्दों में कल्पनाशीलता निहित है और कल्पना हीं सृजनात्मकता का मूल है। अतः हम कह सकते है कि सृजन कला का परिणाम है। ”अल्बर्ट आइंस्टीन” के शब्दों में ”कल्पना ज्ञान से ज्यादा महत्वपूर्ण है” (Imagination is more important than knowledge) अल्बर्ट आइंस्टीन के इस कथन से भी कल्पना के महत्व को ज्ञान के संबंध में समझा जा सकता है।

"The mind without imagination would be as useless as an observatory without telescope"

(Fredvem Aburgh 1923)

Research supports that creative pursuit in adidthnd stems primarily from childhad.

3.5 शिक्षा के माध्यम के रूप में कला (Art in the Form of Education)

शिक्षा के माध्यम के रूप में कला के महत्व और योगदान को रेखांकित करते हुए शिक्षा के विभिन्न आयोगों ने पाठ्यक्रम में दो रूपो को सम्मिलित किए जाने का सुझाव दिया है – विषय के रूप में तथा पाठ्यसहगामी क्रियाओं के रूप में विश्व के प्रमुख शिक्षा विदों नें शिक्षा को रूचिकर प्रक्रिया बनाने पर बल दिया हैं जिससे बालक शिक्षा की ओर आकर्षित हो और वे शिक्षा को बोझ समय कर दूर न मागे। विद्यालय के वातावरण में शिक्षण विद्यियों में तथा अन्य कार्यक्रमों में आवश्यकतानुसार यथोचित्त रूप में चित्रकला, संगीत, नाटक आदि का प्रयोग किया जाना श्रेयस्कर है। बालकों में संवेदनाओं के बीज की कला रूपी उर्वश से अच्छी तरह विकसित किया जा सकता है। कला के रंग में रंगी हुई शिक्षा का प्रभाव दूरगामी एवं प्रभावशाली होता है। विद्यालयी शिक्षा में कला के विभिन्न पहलुओं को सम्मिलित किया जाना निम्न रूप से बालकों के विकास में सहायक होता है –

- समय के सदुपयोग और स्वस्थ मनोरंजन में सहायक।
- निरन्तर अध्ययन की नीरसता एवं शारीरिक मानसिक थकान दूर करने में सहायक।
- व्यायाम में रोचकता।
- आत्म विश्वास में वृद्धि।

- दिव्यांग बालकों के विकास में सहायक।
- मन्द बुद्धि बालकों में आत्म–विश्वास, आत्म संतुष्टि, आत्म सम्मान एवं उत्साहर्वद्धक भावनाओं के विकास में सहायक।
- सहज रूप से एकग्रचित होनें में सहायक।
- अनुशासन की प्रवृति का विकास।
- भावाभिव्यक्ति का विकास एवं अवसर।
- सहानुभूति की भावना का विकास।
- विभिन्न संस्कृति के प्रति सद्भाव एवं समभाव।
- विभिन्न भाषाओं को सीखने के प्रति उत्सुकता।

उपरोक्त सभी बिन्दुओं के अलावा विभिन्न प्रकार की कलाएँ बालकों को समाज सेवा व राष्ट्रहित कार्यों के लिए अभिप्रेरित करती है। कला के प्रति प्रेम बालकों के विकास में उत्प्रेरक का कार्य करती है।

अतः कहा जा सकता है कला शिक्षा बालकों में क्रियात्मक क्षमता, रचनात्मक शैली और तार्किक चिन्तन की शक्ति विकसित करता है। कला के समागम से बालक मानवीय भावों, प्रकृति प्रेम, हढ़निश्चय, आत्मविश्वास, शिक्षण के प्रति को बढ़ाता है। कला हीं है जो हमें अनौपचारिक रूप से भिन्न–भिन्न समय, कालों के सभ्यता और संस्कृति में अवगत कराती है। भिन्न–भिन्न संस्कृतियों से प्रेम करना सिखाती है। सर्वांगीण विकास में यह सहायक है।

3.6 सारांश (Summary)

अब हम इस इकाई के अन्त में उन सभी तथ्यों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे जिनकी चर्चा इस पाठ में की गई है। इस पाठ के प्रारंभ में कला के अर्थ की चर्चा की गई है। कला शब्द का अर्थ एवं प्रयोग जितना सामान्य और व्यापक है यह उतना ही सार गर्भित एवं रहस्यपूर्ण है। विभिन्न कलाकार एवं दार्शनिकों ने इसे विभिन्न ढ़ंग से परिभाषित किया है एवं इसकी व्याख्या दी है, लेकिन इनसारी व्याख्याओं में एक बात समान है। कला एक प्रकार का कृत्रिम निर्माण है जिसमें शारीरिक और मानसिक कौशलों का प्रयोग होता है। जैसा कि कहा भी गया है, रूचि अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत होती है। कला में रूप विधान और विषयवस्तु होते है और कला का विकास विभिन्न माध्यमों से हुआ है। मानव क्रियाओं के आधार पर इसे वर्गीकृत किया गया है एवं शिक्षा में इसके उपयोग एवं महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

3.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. कला से क्या आशय है? इसके विभिन्न आयामों की विवेचना करें।
   What is the meaning of Art? Discuss the different dimensions.
2. कला क्या है? इसके विभिन्न आयाम हमें किस प्रकार लाभान्वित कर रही है।
   What is art? how are its different dimensions benefiting us.
3. शिक्षा के माध्यम के रूप में कला का क्या योगदान है? विवेचना करें।
   What is the contribution of Art in the form of educational medium? Discuss.

3.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. अग्रवाल पब्लिकेशन, स्नेहलता चतुर्वेदी, कला शिक्षा।
2. अग्रवाल पब्लिकेशन, रीता चौहान, नाट्यकला और शिक्षा।
3. राखी प्रकाशन, आन्शवना सक्सैना, सुशील सरित।
4. बिनोद पुस्तक मंदिर पब्लिकेशन, डॉ0 चित्रलेखा सिन्हा, शिक्षा में नाटक एवं कला।

❒ ❒ ❒

इकाई : 4 कला शिक्षा के एकीकरण सिद्धांत के रूप में
Unit : 4 Art as the Unifying Principle in Education

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

4.0 उद्देश्य (Objective)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

4.2 कला और शिक्षा : एक दृष्टिकोण
(Art and Education : Viewpoint)

4.3 शिक्षा के एकीकृत सिद्धांत के रूप में कला
(Art as the Unified Theory of Education)

4.4 कला शैक्षिक मूल्य के रूप में
(Art as a Form of Educational Value)

4.5 सारांश (Summary)

4.6 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Excercise)

4.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

4.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- ❖ कला और शिक्षा की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- ❖ कला और शिक्षा की परस्परता को समझ सकेंगे।
- ❖ शिक्षा के विभिन्न सिद्धांतों में कला का एकीकृत सिद्धांत के रूप में प्रयोग कर सकेंगे।
- ❖ कला के विभिन्न आयामों में शिक्षण–कला के उद्‌भव से परिचित हो सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस इकाई का उद्देश्य है।

4.1 प्रस्तावना(Introduction)

कला एक प्रकार का कृत्रिम निर्माण है जिसमें शारीरिक तथा मानसिक कौशलो का प्रयोग होता है। लेखन कौशल को भी कला का दर्जा दिया जाता है। कला और शिक्षा के बीच एक गहरा संबंध होता है। शिक्षा के उद्देश्यों को कला की सहायता से प्रभावी ढ़ग से पुरा किया जा सकता है। कला तथा शिक्षा की अवधारणा के विषय में इस इकाई में विस्तृत चर्चा की गई है। इस इकाई में कला तथा शिक्षा के संबंध के उपर भी विस्तृत प्रकाश डाला गया है। कला के विभिन्न आयाम होते है, इन अलग–अलग आयामों को भी इस इकाई में बतलाया गया है। कला के विभिन्न सिद्धान्तों में कला के सिद्धान्त के प्रयोग की भी चर्चा इस इकाई में की गई है।

4.2 कला और शिक्षा (एक दृष्टिकोण) (Art and Education)

कला जिसे 'आर्ट' भी कहा जाता है; वर्तमान ज्ञान के युग (नॉलेज एरा) में बेहद प्रचलित, प्रासंगिक और प्रशंसनीय शब्द बन चुका है। बात पलने (पालने और पोषण) की हो या बढ़ने (वृद्धि और विकास); 'जीने' (जीवन और आनंद) की हो या 'सीने' (ह्रदय और शरीर को ढ़क कर रखने वाला आवरण) – हर जगह कला ही कला का बोल बाला है। भारतीय परंपराओं के अनुसार कला उनसारी क्रियाओं को कहते हैं, जिनमें कौशल अपेक्षित है। यूरोपीय विद्वानों ने भी कला में कौशल को महत्वपूर्ण माना है। सरल शब्दों में कहें तो हम कह सकते हैं कि कला एक प्रकार का कृत्रिम निर्माण है जिसमें शारीरिक और मानसिक कौशलों का प्रयोग होता है। कला एक ऐसी 'प्रतिभा' (Talent) है, जो होती तो सबके पास है पर इसकी पहचान (Recognisation) सभी नहीं कर पाते। अगर कुछ गिने चुने लोग इसे पहचान लेते हैं, तो वो अपनी कला को अपने प्रयास एवं अभ्यास से निम्नलिखित प्रचलित रूपों में अभिव्यक्त करते हैं – संगीत कला, नृत्य कला, चित्र कला, शिल्प कला, वास्तु कला आदि आदि। किसी कवि ने कहा है – "साहित्य, संगीत कला विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छ विषाणहीनः।" यह लेखकीय क्षमता को भी कला का दर्जा दिया जा चुका है। टॉलस्टाय के शब्दों में, "अपने भावों को क्रिया रेखा, रंग, ध्वनि या शब्द द्वारा इसप्रकार अभिव्यक्त करना कि उसे देखने या सुनने अथवा पढ़ने में भी वही भाव उत्पन्न हो जाये कला है।" किसी व्यक्ति की अंतः चेतना की अमूर्त विचार, भाव या इच्छा जब बाहर की दनियाँ में विलीन होने के लिए मूर्त हो जाये, तो यही कला है। चाहे इसका माध्यम रंग हो, रूप या आकृति हो, ध्वनि हो, स्वर हो या लेखनी हो। कला अपनी आखिरी पड़ाव पर 'आत्मिक शांति' है। यह 'सत्यः शिवमं सुंदरमं' और 'वसुधैव कुटुम्बकम' के सिद्धांतों का पूर्णतया अनुकरण करती है। कला में मानव मन में संवेदनायें उभारने, प्रवृतियों को ढ़ालने तथा चिंतन को मोड़ने और अभिरूचि को दिशा देने की अद्भूत क्षमता है। यह व्यक्ति को 'स्व' से अनुभूत कराकर उसके सामाजिकता की अंतश्चेतना को जाग्रत करती है। यह व्यक्ति को संवेदनशीलता के साथ मानवीय गुणों से जोड़ती है।

जहां तक शिक्षा के स्वरूप एवं उद्देश्यों की बात करें, तो यह भी आजतक परिभाषित नहीं किया जा सका है। भारतीय दृष्टिकोण 'सर्वांगीण विकास' की बात करता है; तो पश्चिमी दृष्टिकोण 'मानव की मूल प्रवृत्तियों को वांछित दिशा में किया जाने वाला व्यवहारिक परिवर्तन' की बात कहता है। अंततोगत्वा समस्त विमर्श की परिणाम यह बताता है कि शिक्षा के द्वारा हम एक 'सामान्य मनुष्य' को 'सर्वोत्तम मनुष्य' बना सकते हैं। हम उसकी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं व्यवसायिक क्षमता को विकास करके उसे 'आदर्श मनुष्य' का रूप

दे सकते हैं।

सवाल है कि अर्थोपार्जन पर आकर ही शिक्षा अपनी प्रक्रिया पूरी मानलेती है? क्या पढ़ाई और कमाई तक की यात्रा ही शिक्षा है? और अगर है भी तो क्या हमारी शिक्षा व्यवस्था में पाठ्यक्रम और शिक्षण इसे पूरा कर पाने में सफल रहे हैं? अगर नहीं तो क्यों? क्यूँ भारत की शिक्षा व्यवस्था में पढ़ने वाला 40 बालक में अधिकतम 10 ही आत्मनिर्भर हो पाते हैं?

एक दूसरा सवाल यह भी है कि क्या यदि कोई एक बालक अपने जीवन में धन कमा लेता है और धन संचित भी कर लेता है; तो क्या इससे समाज की संरचना प्रगतिशील (Progressive) मानी जाती हैं?

हम जानते हैं कि समाज मनुष्यों का समूह नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधो का समूह है। संबंधों को व्यक्त रूप अर्थात् सामाजिक क्रिया–प्रतिक्रिया का अनुभव होता है और अनुभव होता है, उन व्यक्तियों का भी; जिनके बीच परस्पर संबंध होता है। समाज 'जीवन' और 'जीवित' (Life and Living) के बीच बनता है। अतः इसमें मानसिक तत्त्व का मानवीय गुणों से परिपूर्ण होना आवश्यक है। समाज वहीं है, जहाँ सामाजिक संबंध है। सामाजिक संबंध वहीं होता है जहाँ पारस्परिक क्रिया–प्रतिक्रिया होती है। सामाजिक संबंध में अभिज्ञता (Awareness) आवश्यक है – अभिज्ञता दूसरे की उपस्थिति की सामान्य हित (Common Good) की। जब शिक्षा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए व्यवस्था बनाने की बात करती है, तो उसके दो प्रमुख आधार (Foundation) होते हैं :– एक पाठ्यक्रम और दूसरा शिक्षण (Teaching) इनदोनों ही स्तरों पर शिक्षा व्यवस्था ने कई सिद्धांतों और दृष्टिकोणों को अपनाया है। इनमें दार्शनिक आधार, सामाजिक आधार, मनोवैज्ञानिक आधार, और वैज्ञानिक आधार की शाखाओं में बांटा गया है। इनसभी के दृष्टिकोणों को सरल शब्दों में इसप्रकार समक्षा जा सकता है :–

(क) दार्शनिक आधार :

इसके तीन प्रमुख वर्गीकरण हैं, जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रचलित है – आदर्शवाद, प्रयोगवाद और गांधीवाद। आदर्शवाद कहता है कि बालक के समक्ष ऐसे आदर्श प्रस्तुत किये जाये जिनको जानकर या अनुसरण करके वे जीवन को आदर्श बना सके। यह टी0 पर्सी नन के अनुसार – "सभ्यता के निर्माण की प्रक्रिया का व्यवस्थापन" की बात है। इसकी प्राप्ति साहित्य, कला, संगीत, हस्तकौशल, बुनाई, लकड़ी पर खुदाई, विज्ञान, गणित, भूगोल, इतिहास विषय पढ़ाने की बात की गई है।

प्रोफेसर डीवी और वाग्ले ने विद्यालयों में ऐसे विषयों एवं अनुभवों के प्रशिक्षण की बात कही है, जिससे सामाजिक क्रियाओं (Social Activity) और संलग्नता (Attachment) के द्वारा 'कर के सीखना' (Learning by doing) के कथन को धरातल पर उतारा जा सके। प्रयोगवाद का दृष्टिकोण यही कहता है।

महात्मा गांधी ने अपने गांधीवादी बेसिक शिक्षा में कर्म के प्रति निष्ठा और श्रम के प्रति सम्मान जगाने के लिए हस्तकार्य संबंधी विषयों पर जोर दिया।

(ख) सामाजिक आधार :

आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परम्पराओं के द्वारा शिक्षा ने भाषा, साहित्य, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, स्वास्थ, सैन्यप्रशिक्षण (सुरक्षा की शिक्षा) की बात कही।

(ग) मनोवैज्ञानिक आधार :

इस दृष्टिकोण में बालकों की प्रवृतियों, रूचियों, आवश्यकताओं एवं योग्यताओं को ही महत्त्व दिया गया। मनोविज्ञान के समर्थक शिक्षाविदों ने बालकों के व्यक्तिगत विभिन्नता के सिद्धांत को महत्त्व देते हुए इन्द्रिय प्रशिक्षण, खेल, अनुभव और रूचि और प्रवृति (Intrest & Attitude) पर आधारित क्रियात्मक कार्यों को स्थान दिया है।

(घ) वैज्ञानिक आधार :

वैज्ञानिक आधार प्रदान करने वालों में प्रकृतिवादी स्पेंसर का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने आत्मरक्षा से संबंधित क्रिया, जीवन को सुरक्षित रखने की क्रिया, सामाजिक और राजनीतिक क्रिया, वंशवृद्धि एवं शिशुपालन से संबंधित क्रियाओं का विभाजन करके शैक्षिक प्रक्रिया और पाठ्यक्रम को वैज्ञानिक बनाया।

उपरोक्त समस्त विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि भारत के विद्यालयों पढ़ायी जाने वाली 'शिक्षा' के सिद्धांत और व्यवहार बालकों को समस्त अनुभवों का पुर्नगठन का संदेश देती है। इससे बालकों में भारतीय संस्कृति का ज्ञान, जनतांत्रिक दृष्टिकोण का विस्तार, पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण, सामाजिक चरित्र का विकास और आवश्यकताओं एवं उपयोगिताओं (Need and Utility) के अनुसार योग्यताओं एवं क्षमताओं का विकास करती है। शिक्षा के अंतर्गत इसकी प्राप्ति वास्तविक आयु, मानसिक आयु, बुद्धि लब्धि इत्यादि के आधार पर विभिन्न विषयों कें द्वारा निर्मित विद्यालय के कृत्रिम वातावरण में प्रदान करने की बात रखी गई है।

4.3 शिक्षा के एकीकृत सिद्धांत के रूप में कला (Art as the Unified Theory of Education)

जैसा कि आपने जाना कि शिक्षा भी सर्वांगीण विकास की यात्रा का मंजिल सत्यम् शिवम् सुन्दरम् अथवा बसुधर्वे कुटुम्बकम की चेतना का उद्भव एवं उत्थान माना है। कला ने भी अपना लक्ष्य इन्हीं को माना है।

अतः लक्ष्यों (Objective) का उद्देश्य (Goal) एक ही है – सर्वांगीण विकास और बहुजन हिताय बहुजन सुखाय। शिक्षा के चार पड़ाव ज्ञान, बोध, अनुप्रयोग और कौशल (Knowledge, Understanding, Application and Skill) हैं, तो कला के पाँच पड़ाव रंग, रूप, रस, गंध और स्पर्श एवं अच्छा स्वाद।

सिद्धांत को सरल शब्दों में वह धारणा मान लिया गया है, जिसे सिद्ध करने के लिए, जो कुछ हमें करना था वह हो चुका है और अब स्थिर मत अपनाने का समय आ गया है।

कला को भी मूल प्रवृतियों को पकड़कर उनका समाजीकरण (Socialization) और चारित्रीकरण (Characterisation) करने में सर्वाधिक प्रभावी मानी जा चुकी हैं।

4.4 कला शैक्षिक मूल्य के रूप में (Art as a Form of Educational Value)

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में बालकों को शैक्षिक उपलब्धि पर कला के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता है। अनेक व्यवहारिक परीक्षण से यह सिद्ध हो चुका है कि कला के किसी भी आयाम से जुड़ने वाले बालकों में बुद्धि–लबिध और उपलब्धि का शतमक (Percentile) अधिक है। वर्तमान दौर में शिक्षा का सबसे अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य (Goal) बच्चों में 'सृजनात्मकता' की क्षमता (Ability) को उभारना (Develop) है। यह बात भी सही है कि शिक्षा जहां योग्यता की बात कहती है; वहां वह 3R से आज भी प्रारंभ होती है। 3R अर्थात् रीडिंग, राइटिंग और अर्थमेटिक। सवाल है कि 'साक्षरता' को परिपक्व होकर 'शिक्षा' बनना हैं। यानि 'ज्ञान'

(Knowledge) का बुद्धिमता (Wisdom) में बदला जाना।

शिक्षा के क्षेत्र में किये गये लगभग सभी शोध निष्कर्ष एक विषय पर समान मत (Common Opinion) रखते हैं कि बात 'पढ़ाई से कमाई' के बीच हो या 'जीवन और जीवित' (Life living) के बीच सजग और संतुलित (Aware and Balance) व्यवहार बनाने की – हमें यह तो स्वीकार करना ही होगा कि शिक्षा के किसी एक उद्देश्य को चुनना पड़े; तो हमें चयन करना होगा – समीक्षात्मक चिंतन (Critical thinking) का विकास। सामान्य शिक्षा का उद्देश्य सृजनात्मकता का विकास है और सृजनात्मकता का विकास कला विहीन सामान्य शिक्षा कर ही नहीं सकती। कला बच्चों को रचनात्मक कर्म और काल्पनिक दूरदर्शिता की क्षमता का विकास करती है। यही नहीं यह बच्चों के दृष्टिकोण (Approch) और विवेक (Wisdom) को भी प्रखर और प्रेरक बनाती है।

कला के शैक्षिक मूल्य को निम्नांकित वर्गीकरण के माध्यम से समझ पाना अधिक सरल है :–

4.4.1. पाठेत्तर क्रियाओं में शामिल कला का मूल्य (Value of Art in Cocurricular Activities) -

हम जानते हैं कि शैक्षणिक संस्था में जितने भी प्रकार के पाठेत्तर क्रियायें संचालित की जाती हैं, उन सबकी विचारधारा कलात्मक होती है। खेल का मैदान–इनडोर हो या आउटडोर, सांस्कृतिक गतिविधि संगीत के माध्यम से व्यक्त हो पूरी हो, नृत्य के माध्यम से या दृश्य के माध्यम से सभी में क्रमशः कोई एक उपकरण, ध्वनि, शब्द, रंग, रूप, शैली तो होती ही है। शायद ये सब मूर्त्त है, किन्तु कुछ अमूर्त भी इनसभी क्रियाओं के परिणाम पर प्रभाव डालता है। परिणाम पर प्रभाव डालने वाला वह 'अमूर्त चिंतन' (Abstract thinking) हर किसी का अलग–अलग होता है। कलात्मक दृष्टिकोण रखने वाले हर बच्चे में यह ज्यादातर सकरात्मकता, साहस, सहयोग, आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, श्रम के प्रति निष्ठा, आशा जैसे अनेक सामाजिक मूल्यों का विकास करती है।

4.4.2. शैक्षिक पर्यावरण के लिए कला का मूल्य (Value of Art for Educational Environment) -

शैक्षिक पर्यावरण के अंतर्गत कला का मूल्य शैक्षिक पारिस्थितिकी (Educo Ecology) को संतुलित एवं सक्रिय बनाये रखने के लिए देखा गया है। इसे 'मैन मेड ईको–सिस्टम' का सर्वोत्तम विकल्प कहा जा सकता है।

शिक्षा के शब्दकोष में बेब्सटर महोदय ने "प्राणी अथवा प्राणी समूह को प्रभावित करने वाली बाह्य परिस्थितियों एवं प्रभावों के समग्र" को पर्यावरण की संज्ञा दी है। (The World environment indicates the aggregate of all the external conditions and influence affecting the life and development of an organism or group of organisms.) इस दृष्टि से वे सभी घटनाक्रम (Phenomenon) जो बाह्य तथा जनसंख्या पर प्रभाव रखते हैं, पर्यावरण कहलायेंगे। "क्षिति, जल ,पावक, गगन समीरा–पंचतत्व मिल बना शरीरा।" पर्यावरण में वायुमण्डल, स्थलमण्डल तथा जलमण्डल के सभी भौतिक तथा रसायनिक तत्वों को शामिल किया गया है। संक्षेप में, पर्यावरण वह परिवृत्ति है, जो मानव को चारों ओर से घेरे हुए हैं तथा उसके जीव और क्रियाओं पर प्रभाव डालती है। जहां तक पारिस्थितिकी (Ecology) का प्रश्न है, तो यहां यह कहा जा सकता है संरचना एवं कार्य के आधार पर सभी जीव पर्यावरण के वातावरण में एक–दूसरे पर प्रभाव डालते हुए एक तंत्र (System) की तरह कार्य करता है। इसे पारिस्थितिकी तंत्र या इको–सिस्टम कहा जाता है। यह कहा जाता रहा है कि 'विकास'

एवं 'प्रकृति' में सामंजस्य बैठाकर चलना पारिस्थितिकी संतुलन को बनाये रखने में सहायक हो सकता है।

कला के माध्यम से शैक्षिक पारिस्थितिकी प्रमुख घटक हैं, जहां कलात्मक दृष्टिकोण को परिणाम हमेशा अपेक्षित दिशा में होगा –

1. विद्यालय भवन, पुस्तकालय, प्रयोगशालाएं, खेल का मैदान आदि।
2. छात्रों की आवासीय व्यवस्था।
3. पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन।
4. शिक्षण संस्था का भौतिक–सामाजिक परिवेश।
5. शिक्षकों की योग्यता एवं शिक्षण क्षमता।
6. गुरू–शिष्य संबंध।
7. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की प्रभावशीलता।
8. शिक्षण संस्था का प्रबंधन।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मानव जीवन की संस्कृति के प्रत्येक स्तर पर किसी न किसी प्रकार की कला का अस्तित्व पाया ही जाता है। बाह्य पर्यावरण के प्रभाव में आकर मानव–मन जो क्रिया प्रतिक्रिया का इको–सिस्टम संचालित करता हैं; वह कला ही है। व्यापक अर्थ में – कला का तात्पर्य है सौंदर्यपूर्ण अभिव्यक्ति। कला प्राकृतिक एवं आत्मिक भावनाओं का सम्मिलित रूप है। इसका एक पक्ष सुंदर स्वरूपों को उत्पन्न करने का आनंद और दूसरा पक्ष सर्जनात्मक चिंतन से जन्म लेने वाला संतोष है। अतः बालकों के सामाजिक विकास एवं आत्मिक उत्थान (नैतिक) के लिए कला को 'एकीकृत सिद्धांत' के रूप में स्वीकार करना असंगत नहीं है।

बोगार्डस के शब्दों में, "कला कठिनाई में फंसे व्यक्ति को धीरज बंधाती है। यह व्यक्ति को संकीर्णता के घेरे से निकालकर सामाजिक जीवन के बड़े भाग से संबंधित करती है। कला केवल उपदेश नहीं देती, बल्कि कुछ कार्यों को प्रोत्साहन देकर अथवा कुछ क्षेत्रों में व्यक्तियों को बंधन लगाकर उनके व्यवहारों पर नियंत्रण रखती है।" (E. S. Bogadus] Sociology, P-487)

4.5 सारांश (Summary)

कला मानव जीवन की संस्कृति और कृति का एक अभिन्न अंग है। संगति कला, नृत्यकल, चित्रकला, स्थापत्यकला तथा अन्य ललितकलाएं कला के स्थूलरूप कहें जा सकते हैं। सूक्ष्म स्तर पर कला 'जीने की कला' एवं 'सीखाने की कला' है। अतः इसके दो अन्य संकाय भी माने जाते हैं – जीवन–कला और शिक्षण कला। इनदोनों रूपों में कला का एकीकृति रूप रचनात्मकता एवं संतुलन बनाने की है। अतः वर्तमान दौर में कला शिक्षा के एकीकृत सिद्धांत के रूप में स्वीकार्य है।

4.6 अभ्यास के प्रशन (Questions for Exercise)

1. शिक्षा के एकीकृत सिद्धांत के रूप में कला–शिक्षा का महत्व बतायें।
   Share the importance of art education as an integrated theory of education.

2. 'शिक्षण एक कला है।' इस कथन की पुष्टि करें।

   Education is an art. Confirm this statement.

3. शैक्षिक पर्यावरण को संतुलित रखने में कला–शिक्षा की क्या भूमिका है? स्पष्ट करें।

   What is the role of art education in keeping the educational environment balanced?

4.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. राखी पब्लिकेशन : शिक्षा में नाटक, कला एवं सौन्दर्यशास्त्र, आन्शवना सक्सैना, सुशील सरिल।

2. अग्रवाल पब्लिकेशन, कला और शिक्षा, सत्यम त्रिपाठी।

❐ ❐ ❐

इकाई : 5 कला और समाज
Unit : 5 Art and Society

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

5.0 उद्देश्य (Objective)

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

5.2 कला समाज के परिपेक्ष्य में (Art in the Context of Society)

5.3 कला और समाज के बीच सम्बन्ध (Relationship between Art and Society)

5.4 समाज और कलाकार के बीच सम्बन्ध (Relationship between Society and Artist)

5.5 कला का समाज पर प्रभाव (Impact of Art on Society)

5.6 कला का संस्कृति और समाज पर प्रभाव (Impact of Art on Culture and Society)

5.7 सारांश (Summary)

5.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Excercise)

5.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

5.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- ❖ कला और समाज के सम्बंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ❖ कला का समाज पर प्रभाव एवं इसके विभिन्न पहलूओं से अवगत हो सकेंगे।
- ❖ कला से समाज में क्या परिवर्तन आता है संस्कृति पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है इससे अवगत होंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस इकाई का उद्देश्य है ।

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

कला का उद्भव स्थान कलाकार का चेतन मन होता है। चूँकि कलाकार समाज का एक हिस्सा होता है। अतः कलाकार अपनी कला से किसी समस्या या भावों की अभिव्यक्ति कर दर्शकों, श्रोताओं से संबंध बनाता है। कलाकार अपने अनुभवों को औरों के सामने प्रस्तुत करने के लिए कला के सम्प्रेषण को माध्यम बनाता है और समाज पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से छाप छोड़ देता है। सामान्य रूप में कला, कलाकार के संवेग है और कलाकार से यह अपेक्षा रहती है कि वह समाज के समक्ष कुछ नया मौलिक और अनन्य व्यक्त करे। इस अभिव्यक्ति का अहसास इस पाठ में किया गया है।

यह ध्यान देनेबाली बात है कि समाज के परिप्रेक्ष्य में कला की समझ के लिए कला की अनुभूति का गुण एक आवश्यक पहलू है। कला सुखानुभूति प्रदान करने के साथ–साथ गहन दार्शनिकता से ओत–प्रोत भी होता है। जिसकी झलक समाज के विभिन्न सतह पर मिलती है।

5.2 कला समाज के परिप्रेक्ष्य में (Art In the Context of Society)

सदियों से कला जगत का अपना गौरवशाली इतिहास रहा है। अतः जब भी किसी तरह के विकास की बात होगी और उनमें कला के विकास अवधारणाओं की चर्चा हो या नहीं फिर भी कलाओं की उपस्थिति तो अनिवार्य होगी। ऐसे में भारत के संपूर्ण कला विकास को नजरअन्दाज करना बेमानी ही होगा। यहाँ यह नहीं कहा जा सकता है कि कला के वर्गीकरण के पूर्व जो कलात्मकता आज इतिहास का महत्वपूर्ण हिस्सा है वह सहज आ जाती रही होगी। उसके ज्ञान को देने की प्रविधियों को नजर अन्दाज नहीं किया सकता है।

कलाओं के समय–समय की प्रगति एवं अवरोध इस प्रभावी भावना के निष्पादन में काल चक्र का अपना महत्व होता है। विज्ञान, साहित्य एवं परम्पराएँ जब–जब धर्म और समाज के पक्ष और प्रतिपक्ष में आती है तो उदारता अनुदारता अनिवार्य रूप से कलाओं की रचनात्मकता को प्रभावित करती है। जब हम भारतीय शिक्षा व्यवस्था के इतिहास पर दृष्टि डालते है इस अप्राकृतिक प्रक्रिया के विस्तार की वजाय प्रतिरूपण और अलंकारिता के वैभव का ही विस्तारित कला का स्वरूप ही अधिक प्रचलित हो पाया।

इतिहास के गर्भ में पल रहे भारत का कला वैभव विखरा पड़ा है ठीक उसीतरह जैसे यहाँ का सामाजिक स्वरूप। जब भी हम विस्तार और निरपेक्ष अध्ययन करते तो अनोखा सच सम्मुख आएगा। इतिहास बताता है कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता के विकास की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुई और उनमें जितनी विधाए यशस्वी हुई है उनमें ललित कलाओं का महत्वपूर्ण स्थान एवं योगदान रहा है। भारत हर युग में किसी न किसी रूप में कलाओं को समेटे हुए है। यहाँ पर समुचित रूप से देखा जाय तो निश्चित रूप से कलाओं से पटा पड़ा है। पर दुखद है कि जितना ध्यान जाना चाहिए वह सम्भवतः नहीं जा पाया है। वैसे तो भारत के गौरवशाली इतिहास में यह उल्लेख है कि समय–समय पर इन विधाओं पर ध्यान रहा है जिसके अनेक शासन के उत्थान और पतन के समय कारण कलाओं की स्थिति विविध संकटों के समय में भी कुछ न कुछ नूतन हीं प्राप्त किया है। यही कारण है कि भारतीय समाज के सांस्कृतिक परिवेश में व्यक्ति को साहित्य, संगीत और कलाओं के बिना पशुवत रूप में देखा जाता रहा है यथा उसे प्रमाणित करते हुए ये पंक्तियाँ उक्त अवधारणा को पुख्ता हीं करती है साहित्य संगीत कला विहिन, साक्षात पशु पुक्छ विषाण हीनः।

यही कारण है कि भारतीय मानस कला रूपों को अपने जीवन के हर क्षेत्र मे अलंकृत करती है। कलान्तार में पुनः नवीनतम तरीके से सामंजस्य के साथ प्रयुक्त किया गया है। यहाँ प्रयुक्त कलात्मकता की विवेचना भी महत्व की है जिसमें कालान्तर में बहुत परिवर्तन देखने को मिला है। यहाँ पर यह महत्वपूर्ण है कि जिन कलारूपों की रचना समाज को प्रतिबिंबित करती थी वह धीरे–धीरे विलुप्त हो रही है।

5.3 कला और समाज के बीच सम्बन्ध (Relationship between Art & Society)

समाज का निर्माण व्यक्तियों के समूह का परिणाम है लोग पारस्परिक तौर पर सामाजिक सम्बन्धों का जाल बनाते है। और प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी कला विशिष्टता से सम्बध रखता है या प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर एक विशिष्ट अभिरूचि और अभिक्षमता विद्यमान होती है तभी तो कोई बहुत बड़ा संगीतज्ञ होता है तो कोई बहुत बड़ा साहित्यकार और कवि, ये कला समाज को किसी न किसी रूप से आपस में जोड़ने का कार्य करता है। इसलिए तो कहा गया है, कला समाज का हिस्सा है कला के माध्यम से एक कलाकार सामाजिक परम्पराओं, रीति रिवाजों और नैतिक मूल्यों को वास्तविक जीवन में रंग भरने का कार्य करता है। समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर कला का विकास किया गया है। कला का सम्बध सृजनशीलता से है, क्रियात्मकता से है ना कि विध्वसंकता से है इसलिए हम कह सकते है कला समाज को जोड़ने का कार्य करता न कि तोड़ने का।

5.4 समाज और कलाकार के बीच सम्बन्ध (Relationship between Society and Artist)

कलाकार समाज का एक सदस्य होता है। समाज में कलाकार जीवन की सभी अवस्थाएँ व्यतीत करता है एवं अपने वातावरण के अनुसार विविध अनुभव प्राप्त करता है। इन्हीं अनुभवों को अपनी कला के कौशल पर विभिन्न कला के माध्यम से व्यक्त करता है। कलाकार के कला का वैयक्तिक चरित्र उसके वैयक्तिक गुणों पर निर्भर करता है। अतः उसकी कला का मूल्य उसकी व्यक्तिकता, समय और परिस्थितियों पर आधारित होता है। कलाकार अपने श्रोताओं और दर्शकों से सौन्दर्यानुभूति के स्तर पर जुड़ता है। प्रकृति में किसी उपादान के प्रति हमारा दृष्टिकोण एक प्रकार का होता है, लेकिन वही उपादान किसी कलाकार की कला से निखर कर हमारे दृष्टिकोण को बदल सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कला कृति का सौन्दर्य अभिव्यक्ति प्रकृति में उसकी मूल प्रति से भिन्न है। इस अभिव्यक्तियों का प्रभाव समाज पर पड़ता है और समाज और कलाकार के बीच एक संबंध स्थापित हो जाता है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि कलाकृति को समाज तभी स्वीकारता है जब वह समाज की क्षुधा को शान्त करने में समर्थ होता है। क्षुधा का स्वभाव कलाकृतियों के विषय में पूर्व निश्चित धारणा पर निर्भर करता है। वास्तव में कलाकार अपने श्रोताओं, दर्शकों के सामने छिपें हुए सत्य को प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

"स्पिनोजा" के अनुसार "कला कलाकार का श्रम है जिसमें वह समुदाय को प्रतिभागिता के लिए आंमत्रित करता है।" (Art is the labour of the Artist in which he invites the community to particpate)" Spinoza

5.5 कला का समाज पर प्रभाव (Impact of Art on Society)

"प्रत्येक समाज की अपनी एक कला स्वरूप विशेषता होती है" (Each districtive society has own

characteristic art form) _Radha Kamal Mukherjee. सामाजिक परिवेश कला के स्वरूप पर अपना प्रभाव अंकित करती है। सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन के साथ भी परिवर्तित होती है। जैसे –

अल्लमीर चित्रकला में तत्कालीन मिथों परम्पराओं की झलक मिलती है। प्रत्येक देश में उसके सामाजिक रीति रिवाजों, धर्म और विश्वास से वहाँ की कला प्रेरित होती है, जैसे – इजिप्ट का पिरामिण्ड, विभिन्न काल की मूर्तियों, वास्तुकला, नाट्यकला, साहित्यकला (प्रेमचन्द का साहित्य, निराला का साहित्य, टैगोर का साहित्य आदि)।

कुछ अभिव्यक्तियों पर सरकार/समाज नियंत्रण का समर्थक होता है जैसे – तस्लीमा नसरीन की पुस्तक, सलमान रूदी की पुस्तक, मैथिली शरणगुप्त की पुस्तक, भारत –भारती, एम0 एफ0 हुसैन की चित्रकला, जर्मनी में हिटलर ने एक मंत्रालय की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य कला के प्रर्दशन के पूर्व स्वीकृति लेना अनिवार्य था। इससे स्पष्ट होता है कि कला का प्रभाव समाज पर अवश्य पड़ता है।

वर्तमान कला में प्रयोगवादी तत्व की प्रधानता होती है। हर कलाकार पृथक शैली, पृथक तकनीक अपना रहा है। विकास के चरम लक्ष्य तक कलाकार की कला, समाज को कहाँ तक प्रभावित करेगी या जाएगी यह तो अनुमान लगाना मुश्किल है परन्तु कलाकारों में रूढ़िता के बंधनों से छूटकर विश्व के ओर–छोर छू लेने की आकांक्षा प्रबल हो उठी है।

5.6 कला का संस्कृति और समाज पर प्रभाव (Impact of Art on Culture and Society)

भारत की संस्कृति अनेकता में एकता सिर्फ शब्द से हीं नहीं, बल्कि यह एक ऐसी चीज है जो भारत जैसे सांस्कृति और विरासत में समृद्ध देश पर पूरी तरह लागू होती है। भारतीय संस्कृति विभिन्न समय कालों में अपनी अनूठी कला से मशहूर रही है चाहे वह मौर्यकाल हो या गुप्त काल, मुगलकाल हो या आधुनिक काल, हमेशा से ये संस्कृति की पहचान को आत्मसात होने में मदद करती है।

इसलिए कला, समाज और संस्कृति के संदर्भ में एक विशेष भावात्मक महत्व रखती है। कला के कारण हम अपनी संस्कृति और समाज के हिस्सा के रूप में हैं और इसके कारण भारतीय सहिष्णुता और समृद्धि को संभाल रहे हैं।

भारतीय त्योहार, भारतीय परम्पराओं, भारतीय रीति रिवाज किसी न किसी रूप में कला से जुड़ा हुआ है। शादी विवाह के अवसर पर संगीत, नृत्य, श्रृंगार, चित्रकारी आदि हमें देखने में मिलती है।

5.6.1 कला और सामाजिक परिवर्तन (Art and Social Changes) - समाज की व्यवस्था में परिवर्तन हीं सामाजिक परिवर्तन है किसी भी राजनैतिक प्रभाव, दमन या संघर्ष का प्रभाव जब समाज पर पड़ता है तो सामाजिक परिवर्तन होना हीं है। कला एक मानक माप है कि उन्नति किस दिशा में हो रही है। यद्यपि समाज सभी कलाओं को शीध्र स्वीकार नहीं करती फिर भी सभी कला मानव स्थितियों की अभिव्यक्ति है। मूल, युद्ध या मानव संधर्ष को कला के किसी भी स्वरूप से अभिव्यक्त किया गया हो, वह समाज में परिवर्तन का कारक बनता है। (कविता, नाटक, चित्रकारी के माध्यम से समाज को दिखाना) कलाकार वे लोग होते हैं जो अपने विचारों और प्रतिक्रिया को प्रस्तुत करते हैं वे किसी राजनीतिक दवाव में नहीं आते।

दूसरी ओर सामाजिक परिवर्तन कला को प्रभावित करता है। आशा के गीत, सुन्दर चित्रकला आदि सामाजिक परिवर्तन के प्रभाव का उदाहरण है। कला और सामाजिक परिवर्तन एक दूसरे के पूरक है। कई कलाएं समाज में व्यापक बदलाव लाए हैं। आजादी के समय की कई कविता और रचनाएं ज्वलंत उदाहरण है।

5.7 सारांश (Summary)

कला समाज कि अभिन्न अंग है लोगों में सामाजिक चेतना का संचार कला के माध्यम से किया जा सकता है। समाज और कला का सम्बन्ध का अन्दाजा इसी से लगा सकते हैं। सामाजिक अवसरों में कला का प्रदर्शन हम अक्सर देखते हैं अलग–अलग कलाएँ समाज के विभिन्न सांस्कृतिक सौहार्द्र को दिखाता है। तभी तो समाज से कलाकार का सम्बंध होता है। कला का सम्बंध कलाकार से होता है कलाकार का सम्बंध समाज से होता है। जैसे – एक चित्रकार समाज का हिस्सा है सामाजिक पहलूओं को अपने चित्रकारी के माध्यम से विभिन्न समाज के सामने लाता है, जिसके कारण वह इतना प्रसिद्ध हो जाता है कि समाज में एक व्यापक बदलाव ला सकता है। कला का सम्बन्ध समाज और संस्कृति से भी है तभी तो विभिन्न संस्कृतियों को कला ही जीवित रखे हुए है। कला के माध्यम से हम अलग अलग सांस्कृतिक पहलूओं को जान पाते है।

अतः कहा जा सकता है कला का समाज से अभिन्न सम्बन्ध है। कला समाज में एक सकारात्मक दिशा में भावात्मक कार्य करता है। समाजिक पहलूओं से लोगों को रूबरू कराता है। कला ही समाज को आपस में जोड़ने का कार्य करता है। कला के माध्यम से शिक्षा के कारण लोगों में क्रियात्मक सृजनात्मक उत्थान संभव हो पाता है।

5.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. कला क्या है? कला तथा समाज के बीच क्या सम्बंध है?
   What is art? What is the relatianship between art and society?
2. कला समाज में एक परिवर्तन लाता है कैसे? विवेचना करें।
   How does art bring changes in the society? Discuss.
3. कला का संस्कृति के बीच क्या सम्बंध है? क्या कला संस्कृति को एक पीढी से दूसरी पीढी तक हस्तान्तरित करती है?
   What is the relatianship between art and culture? Does art transfer culture from one generation to another?

5.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. अग्रवाल पब्लिकेशन, नाट्यकला और शिक्षा रीता चौहान।
2. अग्रवाल पब्लिकेशनः कला शिक्षा, स्नेहलता चर्तुवेदी।
3. विनोद पुस्तक मंदिरः शिक्षा में नाटक एवं कला, प्रो0 (डॉ0) चित्रलेखा सिंह।
4. प्रकाशन विभागः भारतीय कला और कलाकार, ई कुमारिल स्वामी।

❑ ❑ ❑

इकाई : 6 कला और मानव विकास
Unit : 6 Art and Human Development

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

6.0 उद्देश्य (Objective)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

6.2 कला की परिभाषा (Definition of Art)

6.3 कला के रूप (Forms of Art)

6.4 कला शिक्षा (Art Education)

6.5 कला शिक्षा के उद्देश्य (Objective of Art Education)

6.6 कला और मानव विकास (Art and Human Development)

6.7 कला और सामाजिक नियंत्रण (Art and Socal Control)

6.8 सारांश (Summary)

6.9 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Excercise)

6.10 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

6.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- ❖ कला की परिभाषा एवं प्रकृति से अवगत हो सकेंगे।
- ❖ कला के विभिन्न रूपों एवं प्रतीकों से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ कला–शिक्षा की प्रकृति समझ सकेंगे।
- ❖ कला–शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों को वर्गीकृत कर सकेंगे।
- ❖ उदविकास, प्रगति और विकास के संप्रत्यय को समझ सकेंगे।
- ❖ कला का जीवन और मानव विकास के परिप्रेक्ष्य में आकलन कर सकेंगे।
- ❖ सामाजिक नियंत्रण में कला के योगदान का संज्ञान ले सकेंगे।
- ❖ कला–शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों को वर्गीकृत कर सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस इकाई का उद्देश्य है ।

6.1 प्रस्तावना(Introduction)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। प्रारंभ में जब भाषा नहीं थी तो शारीरिक हाव–भाव और संकेतों का सहारा लेता था। फिर चित्रांकन एवं लिपि को भाव अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। भाव, रंग, लय और शब्द आदि को आधार बनाकर अपने अभिव्यक्ति को प्रकट करने का प्रयास किया और इस तरह कलाओं की सृष्टि होती चली गई। कला के माध्यम से मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्त्ति करता है, अव्यक्त भावनाओं की तृष्टि करता है और अपने अवकाश के क्षणों का सदुपयोग करता हुआ उससे जीविकोपार्जन भी करता है। कला मानव की दिव्य सृजन प्रतिमा का परिणाम होती है।

यह इकाई इस पाठ की छठी इकाई है। इस इकाई में कला के विभिन्न रूपों एवं प्रतीकों की चर्चा की गई है। कला शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों की भी चर्चा विस्तारपूर्वक की गई है। कला और मानव विकास की भी चर्चा विस्तारपूर्वक की गई है।

6.2 कला की परिभाषा (Difinition of Art)

'यह कहा गया है कि कला मानव की सहज अभिव्यक्ति है। यह विचारों संवेदनाओं और भावनाओं को अभिव्यक्त करने काक माध्यम है।' साथ ही यह भी कहा गया है कि 'कला अवकाश के क्षणों का सदुपयोग है।' मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने कहा है – 'कला दमित वासनाओं का उन्नयन है।' नित्यानंद दास के अनुसार, "कला सम्मिलित रूप में आत्मिक तथा प्राकृति बोध का एक प्रतीक है। इसका एक पक्ष सुंदर स्वरूपों की सृष्टि का आनंद है और साथ ही उनपर मनन करने का आनंद भी है।" इसी प्रकार किसी ने कहा है "कला एक सामाजिक वास्तविकता के रूप में समाज के विकास की अभिव्यक्ति है।"

उपरोक्त परिभाषाओं को ध्यान से पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि कला मानव की अभिव्यक्ति का रूप है। यह अनायास हो या सायास, किन्तु इस अभिव्यक्ति का 'सहज' होना आवश्यक है। मनुष्य अपने भावों को प्रकट के लिए भिन्न–भिन्न शारीरिक क्रियाओं, व्यक्तयों, चित्रों तथा संकेतो का प्रयोग करता है। भावों को अभिव्यक्त करना आदिम मानव काल से ही मानव मन की सहज एवं सुलभ प्रवृति रही है। मोटेतौर पर अभिव्यक्ति की विभिन्न विधाओं को कला माना गया है।

मानव एक सामाजिक प्राणी है। उसके हृदय में गहरी संवेदनाएं हैं, अनेक आशाएं हैं, आकांक्षायें हैं। इनके द्वारा उसके मन में अनेक भावों की सृष्टि होती रहती है। अपने भावों को वह प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करना चाहता है। प्रारंभ में जब भाषा नहीं थी तो वह शारीरिक हाव–भाव और संकेतो का सहारा लेता था। फिर चित्रांकन और लिपि को उसने भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। भाव, रंग, लय और शब्द आदि को आधार बनाकर उसने अपने मन की अतृप्त वासनाओं (भावनाओं) को प्रकट करने का प्रयास किया और अनेक विद्याओं तथा कलाओं की सृष्टि होती चली गई।

इसीलिए कहा गया है कि कला के माध्यम से मानव अपनी इच्छाओं की पूर्ति करता है, अव्यक्त भावनाओं की तुष्टि करता है, अभिव्यक्ति को सृजनात्मक रूप लेकर उसका आनंद लेता है और अपने अवकाश के क्षणों का सदुपयोग करता हुआ उससे जीविकोपार्जन भी करता है। इसप्रकार हम कह सकते हैं कि कला मानव की

दिव्य–सृजन प्रतिमा का परिणाम होती है। विश्व समाज की समस्त शैक्षिक व्यवस्था का एक मात्र उद्देश्य मनुष्य को स्वंय मनुष्य एवं उसके स्वं की अंतः शक्तियों से पहचान कराना है। कला इस शैक्षिक निहितार्थ का संपूर्ण एवं सशक्त सहयोग करती है। दूसरे शब्दों में, कला तमाम शैक्षिक उद्देश्यों के जड़ 'सर्वोत्तम मनुष्य के निर्माण' को उर्वरा शक्ति प्रदान करती है।

6.3 कला के रूप (Forms of Art)

अंर्स्ट फिशर जो मार्क्सवादी जर्मन थे; ने 'कला की जरूरत' शीर्षक नाम से 1959 में पुस्तक प्रकाशित किया था। इसका हिन्दी संस्करण राजकमल प्रकाशन द्वारा 1990 ई0 में किया गया। अनुवादक थें – रमेश उपाध्याय। इस पुस्तक में कला के 'अंतर्वस्तु और रूप' पर विशद् चर्चा की गई है।

इस संसार में हर चीज 'रूप' और भौतिक तत्व का यौगिक है और 'रूप' जितनी ही प्रमुखता प्राप्त करता है – अर्थात् जितना की कम वह भौतिक तत्व से बाधित होता है – उतनी ही पूर्णता प्राप्त होती है। "गणित सबसे पूर्ण विज्ञान है और संगीत सबसे पूर्ण कला।" क्योंकि दोनों में रूप स्वयं अंर्तवस्तु बन गया है। 'रूप' को प्लेटो एक 'भाव' जैसी चीज मानते हैं – एक प्राथमिक सी चीज जिसमें भौतिक तत्व समा जाना चाहता है। एक्विनास के अनुसार, 'प्रत्येक अस्तित्व एक अभौतिक परम लक्ष्य के लिए कार्य करता है। ईश्वर के अलावा समस्त अस्तित्व अपूर्ण है। समस्त अस्तित्वों में पूर्णता की इच्छा होती है। सांसारिक वस्तुओं को यह पूर्णता एक अंतर्निहित संभावना के रूप में दी जाती है और संभावना (Possibility) की प्रकृति हीं यह है कि वह क्रिया (Action) अथवा तथ्य (Fact) बन जाने की चेष्टा करती है। अतः अपूर्ण को पूर्ण होने के लिए सक्रिय होना ही चाहिए। प्रत्येक भौतिक संकल्प की क्रिया है – 'रूप'। तात्पर्य यह है कि रूप (Form) एक क्रिया का सिद्धांत है। प्रत्येक क्रियाकलाप रूप के जरिये संपन्न होता है और प्रत्येक क्रियाकलाप का उद्देश्य कर्ता की प्रकृति को पूर्णता प्रदान करना होता है। प्रत्येक प्राणी विश्व की व्यवस्था में अपनी प्रकृति के अनुकूल क्रिया करके अपनी अधिकतम पूर्णता प्राप्त करता है। अर्थात् वह ऐसे क्रियाकलाप करता है, जो उसके प्राकृतिक रूप से मेल खाते हों। 'रूप' एक लक्ष्य के लिए किया जानेवाला प्रयास है, पूर्णता का मौलिक स्त्रोत है। हालांकि कला के क्षेत्र में रूप ओर अंर्तवस्तु एक–दूसरे को कैसे प्रभावित करते हैं – यह प्रश्न विवादास्पद है। इस प्रश्न को अरस्तु ने सबसे पहले उठाया था।

कला ने विविध रूपों (Form) और प्रतीकों (Symbol) को धारण किया है। कला प्रकृति अथवा प्राणी के क्रियाकलापों की नकल नहीं होती। भारत में इसे योग साधाना माना गया है। यह मानव के विचारों का एक दृश्य रूप है, जो कल्पना शक्ति, आदर्श प्रियता और सृजन शक्ति से युक्त होता है। यह सृजन शक्ति व्यक्ति में अपनी विशेष मनोभावनाएं, संवेदनाएं, विचार,–पद्धति होने के कारण होती है। क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं के कारण नई–नई संभावनाएं जन्म लेती हैं, सभ्यता संस्कृति का विकास होता है और कला के नये–नये रूप सामने आते हैं।

इन कलाओं को भारत में ललित कला के नाम से पुकारा जाता है। ललित कलाओं के प्रमुख पाँच रूप इसप्रकार हैं –

क) चित्रकला

ख) मूर्तिकला

ग) स्थापत्य कला

घ) संगीत

ड.) साहित्य अथवा काव्य

चित्रकला, मूर्तिकला तथा स्थापत्य कला; कला के दृश्य रूप हैं, तो काव्य या साहित्य कला के भाव रूप। संगीत कला के साथ नृत्यकला तथा नाट्यकला भी कला के भावरूप का विकास है।

चित्रकला, मूर्तिकला आदि में व्यक्ति नयी–नयी आकृतियों, रंगो और रूपों की सृष्टि करता हुआ अपने भावों को प्रकट करता है। संगीत में लय, ताल, स्वर के आरोह–अवरोह की सृष्टि करता है, तो काव्य, नृत्य एवं अभिनय में वह शब्द, आंगिक हाव–भाव तथा संवादों के माध्यम से भावभिव्यक्ति करता है।

कला की साधना करने वाला इसप्रकार अभिव्यक्ति के कल्पना लोक से सत्य–लोक में पहुँच जाता है। जिन भावों को वह सीधे रूप से समाज के समक्ष प्रकट नहीं कर पाता; उन्हें कला के विभिन्न रूपों में प्रकट कर अपने मन की इच्छाओं को परितृप्त कर लेता है।

6.4 कला शिक्षा (Art Education)

प्रत्येक बालक में कला की सृजनात्मक प्रतिभा का स्थायी वास होता है। यदि इसके प्रतिभा का विकास हो सके तथा उसको रचनात्मक सृजन की ओर मोड़ दिया जाए; तो उसके जीवन में सुखद एवं लय–बद्ध व्यवस्था का स्वतः संचार हो जाएगा। यही बालक परिपक्व होकर देश का नागरिक बनता है। इस प्रकार कला उसके व्यक्तिगत गुणों का ही नहीं; सामाजिक गुणों का भी संस्कार पैदा करती है। अंततोगत्वा सामाजिक संस्कार परिष्कृत होकर हमारी संस्कृति का संरक्षक बन जाती है। कला के प्रति सृजनात्मक दृष्टिकोण को विकसित करने की दृष्टि से सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम में सभी स्तरों पर कला शिक्षा का समावेश किया गया है। शिक्षक प्रशिक्षण के स्तर पर कला शिक्षा के अध्ययन को प्रारंभ करने के पीछे पाठ्यचर्या 2005 के प्रमुख उद्देश्य 'रचनात्मकता' पर कार्य करने हेतु शिक्षकों को दक्ष करना है। यह उम्मीद की जाती है कि कला–शिक्षा के शिक्षण के पूर्व, न केवल कला विषय के शिक्षक, अपितु समस्त विषयों के शिक्षकों में इस योग्यता का विकास हो जाए कि वे 'विषय–ज्ञान' को 'जीवन–कौशल' में परिवर्तित कर सकें।

6.5 कला शिक्षा के उद्देश्य (Objective of Art Education)

कला शिक्षा के अध्ययन से सभी छात्राध्यापक समाज और संस्कृति को सजाने–संवारने वाले लोक कलाकारों तथा उनकी कला के प्रति सद्भावना का भाव उत्पन्न कर सकेंगे। हमारी लोक कला, लोक संस्कृति का बोध तथा रंगो, आकारों, स्वरों में निहित कला से सकेगा।

कला–शिक्षा के अध्ययनोपरांत शिक्षक निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने की योग्यता विकसित कर सकेंगे :–

1. बालक के मन पर पड़ने वाले प्रभावों को सृजनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करना।
2. बालक में भारतीय संस्कृति एवं पारंपरिक कलाओं के प्रति अभिरूचि जागृत करना।

3. पारंपरिक कलाओं एवं शैलियों के संरक्षण हेतु दायित्व बोध करवाना।
4. सौंदर्य चेतन जागृत करना तथा लोक कला एवं कलाकारों के प्रति अनुराग उत्पन्न करना।
5. विभिन्न सुलभ साधनों एवं स्थानीय साधनों द्वारा कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करना।
6. बालकों को नवीन एवं आधुनिक साधनों और तकनीक द्वारा सृजनात्मक अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करना।
7. बालकों में वातावरणीय सौंदर्य को अनुभूत कर पहचानने की क्षमता उत्पन्न करना।
8. बालकों के कलात्मक संवेदना को दैनिक जीवन में भी बनाये रखना।
9. बालकों में कलाओं में अन्तर्निहित स्वरूप के समन्वित संवेगात्मक ज्ञान को समझे की चेष्टा उत्पन्न करना।
10. बालकों को सर्वांगीण विकास के अवसर प्रदान करना।

6.6 कला और मानव विकास (Art and Human Development)

इससे पूर्व कि हम कला और सामाजिक विकास के विभिन्न आयामों पर चर्चा करें, हमें यह समझना होगा कि विकास का सम्प्रत्यय क्या है? इसके विभिन्न घटक, चरण एवं उद्देश्य क्या है? शिक्षा में इसके प्रयोग और प्रयोजन क्या हैं?

'विकास' एक गतिशील एवं परिवर्तनशील सम्प्रतयय है। विभिन्न विषय एवं विचारकों ने समय एवं संदर्भ के बदले स्वरूप के अधीन इसकी परिभाषाएँ, संकल्पनाएं, विस्तार एवं सीमाएं निर्धारित की हैं। शरीर विज्ञान में बालक के शारीरिक ग्रोथ को विकास (Development) कहा जाता है, तो मनोविज्ञान ने मानसिक शक्ति के वृद्धि को 'विकास' कहा है। इसी प्रकार समाजशास्त्रियों ने चेतन एवं जागरूक मानसिकता को 'विकास' कहा है, तो राजनीतिक एवं आर्थिक विचारकों ने आमतौर पर संरचनात्मक परिवर्तन के आधुनिकीकरण को 'विकास' का दर्जा देते देखे जाते हैं। जहां तक शिक्षा शास्त्रियों की बात है, तो इनका 'विकास' संबंधी दृष्टिकोण सर्वाधिक विस्तृत एवं वैश्विक है। लगभग सभी शिक्षाविदों ने अपने विषय का उद्देश्य हीं 'मानव का सर्वांगीण विकास' माना है। दूसरे शब्दों में, इनके अनुसार – "मानव के स्वयं के अंदर ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक पक्षों को शक्तिशाली बनाने का अर्थ है – मानव का सर्वांगीण विकास। तात्पर्य है कि मानव के स्वयं के अंदर एवं बाहर की परिस्थितियों में; जहां वह अपना जीवन बसर कर रहा है, आजीविका चला रहा है – इनदोनों पक्षों में गुणात्मक विकास को हीं 'समुचित विकास' कहा जा सकता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। यह सत्य है। साथ ही यह भी सत्य है कि मनुष्य के आर्थिक संदर्भ उसके सामाजिक स्वरूप को प्रभावित करते हैं। इसी प्रकार राजनीतिक और सांस्कृतिक संदर्भ भी सामाजिक मनुष्य के क्रिया–कलापों को स्पर्श किए बिना नहीं रहते। अतः इस अकाट्य सत्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि एक समर्थ एवं संवेदनशील मनुष्य के लिए उसको शारीरिक और मानसिक स्वस्थता का होना तो जरूरी है हीं; साथ ही यह भी आवश्यक है कि वह अपने समाज में निरंतर आगे बढ़ने का माहौल प्राप्त कर सके। संक्षेप में, प्रगतिशील मानव एवं प्रगतिशील समाज – इनदोनों का सम्मिश्रित रूप 'विकास' कहा जा सकता है।

6.6.1 उद्विकास (Evolution), प्रगति (Progress) और विकास (Development) का सामान्य अर्थ

:–

पहले समाजशास्त्रीय साहित्य में उपरोक्त शब्दों का अधिक स्पष्ट प्रयोग देखने को नहीं मिलता था। पर आज इन अवधारणाओं (Concepts) को एक निश्चित अर्थ में प्रयोग किया जाता है। इसलिए विकास या उन्नति (Development) का अर्थ भी उद्‌विकास (Evolution) या प्रगति (Progress) से भिन्न है। यह बात निम्नलिखित विवेचन से और अधिक स्पष्ट हो जाएगी।

जब परिवर्तन धीरे–धीरे सरल से जटिल की ओर होता है, तो उसे उद्‌विकास (Evolution) कहते हैं। इसी प्रकार अच्छाई के लिए परिवर्तन को प्रगति (Progress) कहा जाता है। इसके अतिरिक्त विकास (Development) किसी अपेक्षित दिशा में होने वाले परिवर्तन को कहते हैं। ऑगबर्न तथा निमकॉम ने माना है कि ″प्रगति का अर्थ होता है अच्छाई के लिए परिवर्तन और इसलिए प्रगति में मूल्य निर्धारण होता है।″ 'प्रगति' शब्द प्रत्येक काल, देश और व्यक्ति के लिए अलग–अलग मुद्दों एवं परिवर्तन में दिखती है। उदाहरण के लिए, उन्नत देशों में प्रगति का मापदण्ड भौतिम उन्नति है। जो देश आर्थिक दृष्टिकोण से जितना आगे बढ़ा हुआ है, उसे उतना ही प्रगतिशील देश माना जाता है। भारत और कई अन्य देशों में आध्यात्मिक उन्नति को ही वास्तविक प्रगति माना जाता है। इसी प्रकार प्रगति गतिशील भी है। सतयुग में जो प्रगति का अर्थ था, कलयुग में वह परिवर्तित हो गया। विश्व स्तरीय संस्थान यू0 एण0 ओ0 (U.N.O.) ने मानव संसाधरन को जीवन स्तर की प्रगति का सूचक माना है।

यदि शाब्दिक अर्थ की चर्चा करें, तो प्रगति शब्द अंग्रेजी के "Progress" का हिन्दी रूपांतर है। यह शब्द लैटिन के Progreditior शब्द से निकला है। इसका अर्थ है 'आगे बढ़ना' (To step forward)। इसप्रकार प्रगति का साधारण अर्थ किसी इच्छित या वांछित लक्ष्य की ओर बढ़ना है। परन्तु चुंकि समाज के लक्ष्यों में समानता नहीं होती, अतः साधारण तौर पर यह कहा जाता है कि समाज में कल्याणकारी परिवर्तनों को ही सामाजिक प्रगति कहा गया।

'विकास' (Development) शब्द परिवर्तन की उस गति को दर्शाता है, जिसके अंतर्गत एक अवस्था दूसरी अवस्था का स्थान लेती हुई अपेक्षित दिशा में आगे बढ़ती जाती है। इसमें एक के बाद दूसरी नई अवस्था या अवस्थाएं सामने आती जाती है। इस प्रकार अपेक्षित दिशा में नियोजित परिवर्तन को ही विकास कहा जाता है।

उपरोक्त बात सामाजिक जीवन के संबंध में भी लागू होती है। सामाजिक जीवन स्थिर या जड़ नहीं है। इसमें अपनी एक गति होती है और इसी गति के कारण, वह समय के साथ–साथ आगे बढ़ता जाता है। इसीलिए मानव के सामाजिक जीवन में एक के बाद दूसरी नई अवस्था या अवस्थाएं प्रगट होती रहती हैं।

विकास का क्षेत्र सामाजिक हो सकता है और आर्थिक भी। सामाजिक विकास से हमारा तात्पर्य सामाजिक जीवन में विकास की प्रक्रिया को क्रियाशीलता से है। यद्यपि आर्थिक विकास का भी प्रभाव सामाजिक विकास पर निश्चित रूप से पड़ता ही है।

6.6.2. कला और सामाजिक विकास के अंतःसंबंध :–

टी0 वी0 बोटोमोर ने अपनी पुस्तक 'समाजशास्त्र' में लिखा है कि ″साधारण प्रयोग में विकास (उन्नति) का अर्थ है – 'एक क्रमिक उन्मीलन', किसी भी वस्तु की अधिकतम जानकारी। ....परन्तु सामाजिक विकास को

हम बिल्कुल इस अर्थ में नहीं देखते। सामाजिक जीवन के संदर्भ में विकास शब्द का प्रयोग यह दर्शाने के लिए करते हैं कि मनुष्य अपने ज्ञान व कौशल के आधार पर प्राकृतिक पर्यावरण से किस प्रकार विस्तार अथवा संतुलन स्थापित करने की क्षमता बढ़ता जा रहा है।" कहने का तात्पर्य यह है कि ज्ञान की प्रगति और प्रकृति पर मानवीय नियंत्रणों के बढ़ने के फलस्वरूप आर्थिक जीवन में घटित निश्चित व नापे जाने योग्य परिवर्तनों को ही विकास (उन्नति) माना जाता है।

6.6.3. कला और समाज :–

जैसा कि बताया जा चुका है कि क्रियाओं प्रतिक्रियाओं के कारण नई–नई संभावनायें जन्म लेती हैं। कला निखरती है, तो सभ्यता संस्कृति का विकास होता है। इससे स्पष्ट है कि मानव समाज के विकास में कला का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। कला शिक्षण के द्वारा बालकों में संस्कृति के लक्ष्यों की एकरूपता और बिखराव को जानने, समझने एवं परखने की क्षमता का विकास किया जा सकता है। यह भी सिद्ध हो चुका है कि कला समाज में परिवर्तनकारी तत्वों का विकास करती है। अतः कला–शिक्षण एक अनिवार्य मानवीय क्रिया एवं विचार सम्प्रेषण की महत्वपूर्ण प्रणाली के रूप में स्थापित हो सकती है। इतना ही नहीं, जो संस्थाएं सामाजिक हितों के लिए कार्य करती है, वे इसके महत्व को भलीभांति पहचानती हैं तथा स्वीकार करती है। इसलिए समाज के प्रत्येक क्रिया कलाप के साथ कला के कारण बालकों को जुड़ने के अवसर प्रदान हो सकते हैं। इसरूप में कला बालकों का सामाजिक विकास करके उन्हें सामाजिक बदलाव, जन–आंदोलन और प्रगति की मुख्य धारा से जोड़ सकता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कला चूंकि समाज से अलग नहीं है; इसीलिए प्रत्येक समाज अपनी कला को प्रोत्साहित करता है। बालकों में कलात्मक अभिरूचि का विकास करके उसे समाज और संस्कृति का संरक्षक बनाया जा सकता है। अतः सभ्यता और संस्कृति के अनुसरण, अध्ययन और विकास की दृष्टि से 'कला–शिक्षा' के अध्ययन की आवश्यकता स्वतः प्रतिपादित होती है।

6.6.4. कला और जीवन :–

अभी तक हमने जाना कि कला हमारे दैनिक जीवन के साथ इसप्रकार गुँथी हुई है कि हम पूरी तरह कलामय हो गये हैं। बालक के जन्म लेने पर मधुर गीतों (सोहर और लोरी) के साथ उसका जीवन जुड़ने लगता है। साथ ही परिवार के अन्य लोग रंग–बिरंगे खिलौनों, चित्रों, वाद्ययंत्रों, नाना प्रकार के अभिनयों और द्वारा परिहासों से बालक का मनोरंजन करते हैं। बालक क्रमशः घर–आंगन और आस पड़ोस के कला तत्वों से परिचय प्राप्त करता हुआ अपने भीतर कला के प्रति आकर्षण उत्पन्न कर लेता है। ...या कहा जाये कि स्वतः बालकों में कला के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। उसकी चेष्टाएं, हाव–भाव और वाणी में एक लय उत्पन्न होने लगती है।

पुनः बालकों को शिक्षा मिलती है सांस्कृतिक उत्सवों को, मेलों और रीति रिवाजों की। हमारी लोक संस्कृति से परिचय होते–होते वह भाषा, इतिहास और भूगोल जैसे विषय पढ़ता है। उसके मन में कला के प्रति गहरी आस्था होने पर भी कला के संबंध में उसका ज्ञान व्यवस्थित नहीं हो पाता। पाठशाला में पाठ–सहगामी क्रियाओं में वह भाग लेता है। चित्र, कविता, गीत, नाटक आदि उसके दिनचर्या का हिस्सा बनते हैं। प्रकृति, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे आदि उसके कलामय मन को लुभाते हैं।

परन्तु सच तो यह है कि इसके बावजूद बालक समझ नहीं पाता कि जीवन के पग–पग पर बिखरे कला के इन उत्कृष्ट आयोजनों का आखिर क्या उद्देश्य हैं? 'कला–शिक्षा' में शिक्षण की सफलता बालाकों में इन प्रयोजनों अथवा उद्देश्यों की 'समझ' (Understanding) का विकास करती है। परिणाम स्वरूप बच्चों में कलात्मक कौशलों के माध्यम से सामाजिक कुशलता का निर्माण कार्य प्रारंभ हो जाता है।

6.7 कला और सामाजिक नियंत्रण (Art and Social Control)

हमने नित्यानन्द दास के परिभाषा से यह जाना कि कला सम्मिलित रूप में आत्मिक तथा प्राकृतिक बोध का प्रतीक है। इससे स्पष्ट होता है कि कला सामाजिक और मूल्यों आदर्शों से हमारा परिचय कराती है। हमारे मूल्य एवं आदर्श सामाजिक परम्परा में 'सामाजिक नियंत्रण' (Social Control) के अनौपचारिक मूलभूत स्त्रोत हैं। कहा जाता है कि गांधी जी 'सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र' का नाटक देखकर ही सत्य के पुजारी बने थे। इसी प्रकार संगीत भी व्यक्ति को सद्प्रेरणा देने में सहायक सिद्ध होता है। एक लेखक अपनी रचना के माध्यम से उचित और अनुचित का ज्ञान करवा सकता है। राष्ट्रीय गीत हमारे अंदर राष्ट्रीय भावनाओं के उत्तेजनाओं को बल प्रदान करती है। इसी प्रकार लोकगीत और लोकनृत्य में ग्रामीण समुदाय या जनजातीय समुदाय के अनेक लोग एक साथ भाग लेते हैं। इस कृत्य से सामाजिक–सांस्कृतिक एकता की भावना प्रबल होती है। यह एकता समाज विरोधी कार्यों पर रोक लगाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हम बालकों में कला–शिक्षण के द्वारा सामाजिक नियंत्रण की क्षमता का भी विकास कर सकते हैं।

6.8 सारांश (Summary)

प्रस्तुत उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि कला का सामाजिक विकास से गहरा संबंध है। किसी भी कार्य को सरस, सुन्दर और सरल तरीके से करने के लिए जिस कौशल की आवश्यकता पड़ती है, वह कला है। कला समाज से एवं समाज कला से प्रभावित होता है। अतः कला और सामाजिक विकास का संबंध गहरा है। कला व्यक्तिगत और सामाजिक रूप में मानव एवं मानव समाज को विकसित करता है। "अंतर्वस्तु" और "रूप" कला के संरचना एवं उद्देश्य संबंधी संकल्पना का विवादस्पद पहलू है। भारत में लगभग 64 कलाओं की चर्चा की गई और यूरोप में दो प्रकार के कलाओं की ललित कला (जिसमें लालित्य का प्राधान्य हो और उपयोगिता कम हो) तथा उपयोगी कला (जिसमें उपयोगिता का प्राधान्य हो तथा लालित्य गौण हो।) 'कला–शिक्षा' और 'कला–शिक्षण' शिक्षा व्यवस्था के पाठ्यचर्या 2005 के उद्देश्य 'रचनात्मकता' को पूर्ण करने का प्रमुख साधन है। बालकों में कलात्मक प्रतिभा को उजागर करके हम उनकी सृजनात्मक क्षमता एवं समायोजन की क्षमता का समुचित विकास कर सकते हैं।

6.9 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. कला और कला–शिक्षा से आप क्या समझते हैं? वर्णन करें।
   What do you understand by art and art education? Describe it.
2. कला–शिक्षण के उद्देश्यों पर प्रकाश डालें।
   Throw light on objective of art education.

3. 'प्रगति' और 'विकास' की अवधारणा को स्पष्ट करें।

Explain the concept of progress and development.

4. 'कला मानव विकास का एक अनिवार्य अंग है।' इस कथन की पुष्टि करें।

'Art is an essestial part of human development'. Substantiate this statement.

5. 'कला सामाजिक नियंत्रण का भी कारक है।' इस कथन की समीक्षा करें।

"Art is also factor of social control" Review this statement.

6.10 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. शर्मा एवं अन्य, 1989, कला–शिक्षा, साहित्यागार, जयपुर।
2. मुखर्जी एवं अग्रवाल, 2008, सामाजिक नियंत्रण एवं सामाजिक परिवर्तन, विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
3. उपाध्याय, रमेश, 1990, कला की जरूरत, पेज–126, राजकमल प्रकाशन।
4. शर्मा, हरिद्वारी लाल, 2009, कला – दर्शन (हिन्दी संस्थान उ0 प्र0 द्वारा पुरस्कृत), साहित्य संगम, इलाहाबाद।
5. सिंह, चित्रलेखा, 2008, कला शिक्षण, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
6. शर्मा, कोमल, 2017, कला–शिक्षण, आर0 एस0 ए0 इण्टरनेशनल, आगरा।
7. प्रधान, गोपाल (अनुवादक), 2001, कला का इतिहास दर्शन, (मूल–आर्नल्ड हाउजर), ग्रंथ शिल्पी इण्डिया प्रा0 लिमिटेड, शाहदरा, नई दिल्ली।

❒ ❒ ❒

इकाई : 7 स्वअभिव्यक्ति के लिए कला
Unit : 7 Art for Self Experssion

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

7.0 उद्देश्य (Objective)

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

7.2 बाल कला (Child Art)

7.3 कला शिक्षा और शिक्षण–अधिगम–प्रक्रिया (Art Education and Teaching Learning Process)

7.4 टॉलस्टॉय के कला संबंधी विचार (Tolstoy's View on Art)

7.5 सारांश (Summary)

7.6 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Excercise)

7.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

7.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- ❖ बाल कला की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- ❖ बाल कला एवं सृजन प्रक्रिया की मनोदशाओं को समझ सकेंगे।
- ❖ कला शिक्षा के महत्व को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
- ❖ बाल कला को मनोवैज्ञानिक दशाओं से संबंधित टॉलस्टॉय के शैक्षिक विचारों से अवगत हो सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस इकाई का उद्देश्य है ।

7.1 प्रस्तावना(Introduction)

विगत परिचर्चा में आपने देखा और जाना कि कला का मनुष्य और उसके जीवन, उसकी प्रगति से सीधा संबंध है। भारत के समाजवादी चिंतन में मानव और उसकी समष्टि, उसके श्रम, सूझ, समझ और साझेदारी की माँग को महत्व दिया गया है। मनुष्य की रचनात्मकता के लिये नित नये आयाम खुलते गए, तो इसने समष्टि–जीवन के अंतःपक्ष में भी प्रवेश किया और जहाँ इसने प्रवेश करके इसको छू भर दिया, वहाँ कलात्मक सौंदर्य और रूप की संपदायें प्रकट हो गई। कला के विकास ने 'मूल्य–बोध' को पुष्ट किया और इसलिये आज वह मात्र कलात्मक न रहकर, संस्कृति की सम्पदा (Cultureal) की भूमि पर पहुँच गई। जो पहले मात्र चिह्न, संकेत या छायायें थे; वे समष्टि मानस में पले–पनपे प्रतीक बनकर कला में प्रवेश पा गये। आज कला संस्कृति के केन्द्र में स्थित है।

यह इकाई इस पाठ की सातवीं इकाई है। इस इकाई में कला शिक्षा और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की चर्चा की गई है। इस इकाई में टॉलस्टॉय के कला संबंधी विचार की चर्चा भी विस्तारपूर्वक की गई है।

7.2 बाल–कला (Child Art)

कला में देखने के लिए दो नजरिये हैं : एक, सृजन की प्रक्रिया (Process) को देखना और दूसरा स्वंय सृष्टि अथवा कला–कृति (Product) को।

हम यहाँ सृजन के नजरिये से विचार कर रहे हैं : सृजन की क्या शर्तें हैं? मानव कब सृजन करता है और क्यों? इन प्रश्नों के उत्तर से बाल–कला के महत्व को समझा जा सकता है। मूलतः ये प्रश्न मन के साथ जुड़ा हुआ है, अतः स्वानुभूति की विवेचना कला–मनोविज्ञान के साथ जुड़ी है।

कला की पहली शर्त है मौलिकता और नयापन। किसी तरह की पुनरावृत्ति कला–सृजन को सह्म नहीं। मनोविज्ञान की दृष्टि से बालक के लिए सबकुछ नया होता है। अद्‌भुत और आश्चर्यजनक। ज्यों–ज्यों वह बढ़ता है, नयापन घटने लगता है। सामान्यतः वयस्क व्यक्ति के लिए कुछ भी नया नहीं, रोचक नहीं, सरस नहीं। रस और रूचि, आश्चर्य और आह्लाद से विरक्त सामान्य व्यक्ति के संसार में 'सृजन' समाप्त हो चुका होता है। उदाहरण स्वरूप –

बालक के हाथ में पेंसिल, रंग, कागज दीजिये, वह उसपर कुछ बनाता है – यद्यपि हम वयस्क इसे बिगाड़ना कहेंगे – और वह बनाकर किलकारी मारता है, आनंद में उछलता है, अपनी उपलब्धि पर तृप्ति का अनुभव करता है। ऐसी स्थिति में हमें बालक की कृति को नहीं देखना चाहिए। हमें देखना है उस सृजन की प्रक्रिया ओर उसकी प्रतिक्रिया को, जो तत्क्षण बाल–मन से उमड़ कर निकला है। सच मानें तो पिकासों को अपनी कृतियों को बनाकर क्या तृप्ति हुई होगी, जो इस क्षण बालक को कागज पर ऊल–जलूल कीड़े–कांटे बनाकर होती है। यह है कला में सृजन का सुख।

कला–सृजन के मनोविज्ञान (Criativity Psychology) की मान्यता है कि उन्मुक्तता (Freedom) और लोच (Flexibility) इस प्रक्रिया के प्राण हैं। बंधन और जड़ता से सृजन का प्रादुर्भाव हीं नहीं होता। ज्यों–ज्यों आदमी प्रौढ़ होता है, गतिहीनता बढ़ती है। इसका कारण शायद यह है कि निरंतर अभ्यास और पुनरावृत्ति से प्रौढ़ की चेष्टा निश्चित, स्थिर और दृढ़ होती है, उसकी प्रक्रियाओं में सफाई आती है, कौशल दिखाई देता है पर

इसके साथ ही उसमें 'नया' ग्रहण करने की क्षमता घटने लगती है। दूसरे शब्दों में सर्जनात्मकत का ह्रास होने लगता है। यह है बड़ा होने के मूल्य, जो हम चुकाते हैं। सभी के साथ पुनरावृत्ति की विवशता (Repetetive mania) करूणाजनक होती है, पर यह है अनिवार्य।

प्रश्न है : क्या इस नियति से बचा जा सकता है या इसे टाला जा सकता है। शरीर का डॉक्टर भी तो नस–नाड़ियों, पेशियों में लचीलापन बनाये रखने के लिए व्यायाम और हाथ–पैर चलाने की सलाह देता है। लोच जीवन है और जड़ता मृत्यु।

जो हो, प्रत्येक प्रौढ़ को अपने स्वास्थ्य के लिए 'बालकपन' का नित्य अभ्यास करना चाहिए। यह अभ्यास है– सृजन का अभ्यास अर्थात् तन–मन को लचीला बनाये रखने का अभ्यास। इसके अभाव में हमारा साधारण सुख भी बोरियत की उमस से भर उठता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हमारा नजरिया आश्चर्य और आनंद के साथ नित्य नवीनता को देखने का अभ्यास करने का हो।

क्रोचे ने ठीक हीं कहा था : कलाकार हमेशा बालक होता है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि बालक हमेशा कलाकार होता है; मुक्त सर्जक। यदि यह सही हो तो बाल–कला और प्रौढ़–कला का अंतर हो जाता है। सच्ची कला अपने में बालक–कला है अर्थात् प्रौढ़ तन में बालक का मन। प्रौढ़ के हाथ की सफाई और बालक के मन की उन्मुक्त सूझ। इसी का नाम तो कला में सृजन है। संभव है कि एक ही आदमी में प्रौढ़ का कौशल और बालक के मान मस्तिष्क की लोच हो। कला में असंभव–सा लगनेवाला दोनों का संयोग संभव होता है। यह कला और स्वानुभूति का संयोग है। यह संयोग एक सामान्य व्यक्ति को कलाकार की भांति रचनात्मक प्रतिक्रियायों का जनक बनाती है। यह कलाकार की आवश्यकता और कला–सृजन का विद्यान है।

'स्व' का स्वच्छन्द प्रवाह सुख है, स्वास्थ्य है और सृजन भी।

बाल–कला का महत्व है कि इसके अध्ययन से हम एक महत्वपूर्ण समीकरण को समझ सकते हैं, जो दर्शन, विज्ञान और कला–तीनों के लिए सामान्य है। दूसरे शब्दों में 'स्व' की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति = सृजन = सुख = स्वास्थ्य।

बालक अपनी कला के द्वारा इसी समीकरण को सच्चा करता है। अतः हमें यह मानना होगा कि बाल–कला को समझने से कला–शिक्षण मनोविज्ञान के विभिन्न आयामों यथा स्वानुभूति, स्वाभिव्यक्ति, स्वावलोकन इत्यादि अवस्थाओं से सीखना है।

7.3 कला शिक्षा और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया (Art education and teaching learning Process.)

उपर्युक्त चर्चा एवं अध्ययन से हमने जाना कि कला शिक्षार्थी के मनोवैज्ञानिक पक्षों पर बाल्यावस्था से ही विशेष प्रभाव डालती है। अतः यह स्पष्ट होता है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की प्रभावशीलता को सक्रिय करने एवं रखने में शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य स्थापित अंतक्रिया (Intraction) में संप्रेषण (Communication) की कलात्मक अभिव्यक्ति का भी उतना ही महत्व है, जितना 'शैक्षिक तकनीकि (Educational Technology) पर आधारित संप्रेषण–कौशल का। फलैण्डर्स के अंतःक्रिया विश्लेषण संबंधी 11 सुत्री कार्यक्रम द्वारा यदि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की व्यवस्था को सक्रिय एवं सफल बनाया जा सकता है, तो कलात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा शिक्षण

अधिगम प्रक्रिया को रोचक, प्रेरक और आत्मग्राही बनाया जा सकता है।

अब अगली चर्चा के द्वारा आप जानसकेंगे कि कला किसप्रकार शिक्षण, अधिगम प्रक्रिया की जैविक पृष्ठभूमि के रूप में काम करती है। किस प्रकार यह स्वाभिव्यक्ति, स्वावलोकन एवं स्वानुभूति के मनोवैज्ञानिक पक्ष को स्पर्श कर उनका मार्गदर्शन करती है।

7.4 टॉलस्टॉय के कला संबंधी विचार (Tolstoy's View on Art)

हम जानते है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के बीच तीन प्रमुख स्तंभ है। बालक, अध्यापक और सार्वजनिक शिक्षा। कला के द्वारा शैक्षिक कृत एवं प्रयोग को समझने के लिए हमें किसी कलाकार शिक्षाविद् के सत्ताआधिकारिक ज्ञान (Autherative Knowledge) का प्रयोग करना होगा।

इस संदर्भ में टॉलस्टॉय के शैक्षिक विचार अधिक उपयोगी हैं। आप जानते हैं कि टॉलस्टॉय बाल–मनोविज्ञान के अद्भूत ज्ञाता थे। यद्यपि उनका जीवनकाल सन् 1825 से 1910 के बीच रहा, किन्तु उनके विचारों एवं प्रयोगों का काल वर्तमान युगीन अर्थात् समसामयिक है। वे एक महान् उपन्यासकार, नाटककार तथा कथाकार भी थें। बालक, अध्यापक एवं सार्वजनिक शिक्षा पर उनके विचार कुछ इस प्रकार थें :–

(क) **बालक के बारे में :**

1. बच्चा जन्म से निर्दोष होता है और समाज को कुरीतियां उसे हिंसक, क्रूर, झूठा एवं ढोंगी बनाती है। बच्चों के साथ मानवोचित्र व्यवहार होना चाहिए और उसके व्यक्तित्व का हमेशा आदर किया जाना चाहिए।
2. छात्र को ज्ञान प्राप्त करने की आकांक्षा होनी चाहिए और यह आकांक्षा उसकी 'स्वतंत्र इच्छा' से व्यक्त होती है। तभी छात्रों में सक्रियता, आत्म–निर्भरता, चेतनाशीलता, अटलता जैसे गुण पैदा होंगे।

(ख) **अध्यापकों के बारे में :**

1. किसी अध्यापक के लिए सर्वोत्तम विधि वह है जिसे वह सबसे अच्छी तरह जानता है।
2. सर्वोत्तम अध्यापन वह होगा, जिसके पास हर चीज का स्पष्टीकरण तैयार होगा, जिसने विद्यार्थी के विकास को रोका था।

(ग) **सार्वजनिक शिक्षा के बारे में :**

1. इनका मत शिक्षा के बारे में सबसे अलग है। इन्होंने शिक्षा की अवधारणा को 'सृजनात्मक श्रम' कहा है।
2. शिक्षा के उद्देश्यों के संदर्भ में उनका मानना है कि शिक्षा ऐसी हो जिसे प्राप्त कर छात्र जिन लोगों के बीच रहता है, उनका भला करे।
3. उनका मानना था कि सांसारिक मामलों में बुद्धिमानी यह जानने में नहीं है कि क्या करना चाहिए, बल्कि यह जानने में है कि क्या पहले करना चाहिए और क्या बाद में।
4. शिक्षाशास्त्र की एकमात्र कसौटी स्वतंत्रता और एकमात्र विधि अनुभव है।

आशय यह है कि कला के द्वारा शिक्षा की व्यवस्था, बालकों के विकास के आयाम एवं उनकी अनुभूति और विचार को निर्देशित किया जा सकता है।

जहाँ तक शिक्षा, विकास, अनुभूति एवं विचार को परस्परता की बात है, तो इस संदर्भ में हम 1899 में जॉन ड्यूबी द्वारा लिखित पुस्तक 'द स्कूल एण्ड सोसायटी' में लिखा है कि –

"शिक्षा व्यक्ति को उन समस्त योग्यताओं का विकास है, जो उसमें अपने वातावरण पर नियंत्रण रखने तथा अपनी संभावनाओं को पूर्ण करने की सामर्थ्य प्रदान करें।" व्यक्ति की 'अनुभूति' व्यवहार के रूप में एवं संवेदना सामर्थ्य 'विचार' के रूप में वातावरण के समक्ष उपस्थित होता है। अतः शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति की बात हो अथवा उसके निहिनार्थ किये गये प्रयासों की; कक्षाकक्ष की अंतःक्रिया (Classroom Interaction) हो या समाज की अंतःक्रिया (Social Interaction); आत्मिक अंतःक्रिया (Insight Interaction) के अभाव में संभव नहीं। कला एवं उसके विविध रूप (Insight Interaction) आत्मिक अंतःक्रिया के द्वार पर दस्तक देकर उन्हें खोलते है।

7.5 सारांश (Summary)

कला किसी कृत (Action) के रूप में हो या कृति (Creativity) के रूप में; विषय के रूप में हो या मनोवृत्ति (Approch) के रूप में – यह हर रूप में मानव मन, बुद्धि और आचरण को प्रभावित करती है। बाल–कला की अवस्थाओं का अवलोकन शिक्षण कला के दृष्टिकोण को सरल, स्पष्ट, रोचक एवं व्यवहारिक बनाते है। कला के द्वारा बालकों में स्वाभिव्यक्ति, स्वावलोकन वं स्वानुभूति की क्षमता को सक्रिया एवं संतुलित किया जा सकता है।

7.6 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. बाल–कला और शिक्षण–कला से आप क्या समझते हैं? बालक कला और शिक्षण कला के अंतःसंबंधों पर प्रकाश डालें।
   What do you think of child-art and teaching-art? Highlight the interconnection of child art and teaching art.
2. स्वाभिव्यक्ति, स्वावलोकन एवं स्वानुभूति की प्रक्रिया में कला के महत्व पर प्रकाश डालें।
   Highlight the importance of art in the process of self experssion, keen observations and sense of apperciation.
3. कला के संदर्भ में टॉलसटॉय के शैक्षिक विचारों की विवेचना करें।
   Discuss Tolstoy's educational views in terms of art.

7.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. शर्मा एवं अन्य, 1989, कला–शिक्षा, साहित्यागार, जयपुर।
2. मुखर्जी एवं अग्रवाल, 2008, सामाजिक नियंत्रण एवं सामाजिक परिवर्तन, विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
3. उपाध्याय, रमेश, 1990, कला की जरूरत, पेज–126, राजकमल प्रकाशन।
4. शर्मा, हरिद्वारी लाल, 2009, कला – दर्शन (हिन्दी संस्थान उ0 प्र0 द्वारा पुरस्कृत), साहित्य संगम,

इलाहाबाद।

5. सिंह, चित्रलेखा, 2008, कला शिक्षण, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
6. शर्मा, कोमल, 2017, कला–शिक्षण, आर0 एस0 ए0 इण्टरनेशनल, आगरा।
7. प्रधान, गोपाल (अनुवादक), 2001, कला का इतिहास दर्शन, (मूल–आर्नल्ड हाउजर), ग्रंथ शिल्पी इण्डिया प्रा0 लिमिटेड, शाहदरा, नई दिल्ली।

❒ ❒ ❒

इकाई : 8 दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला के विभिन्न रूप
Unit : 8 Different forms of Visual & Performing Art

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

8.0 उद्देश्य (Objective)

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

8.2 कला का वर्गीकरणा (Classification of Art)

8.3 दृश्य कला (Visual Art)

8.4 प्रदर्शनकारी कला (Performing Art)

8.5 कला का शैक्षिक महत्व (Educational Importance of Art)

8.6 सारांश (Summary)

8.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

8.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

8.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगणः

- ❖ कला और उसके विभिन्न आयामों को जान सकेंगे,
- ❖ दृश्य कला क्या है? इसके विभिन्न रूपों को जान सकेंगे,
- ❖ प्रदर्शनकारी कला क्या है? इसके विभिन्न आयामों को जान सकेंगे,
- ❖ कला के विभिन्न आयामों का बालकों के जीवन में शैक्षिक महत्व क्या है?

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

कला ब्रह्म प्रभाव की अभिव्यक्ति है। कुछ लोग कला शब्द है। इसके विभिन्न आयाम कला के हर रूपों की अभिव्यक्ति करती है। दृश्य कला के रूप में मुर्तिकला, वास्तुकला, चित्रकला के विभिन्न रूपों को जानते हैं तो प्रदर्शनकारी कला के माध्यम से संगीत के विविध रूप–गायन, वादन और नृत्य, समाज के सामने विभिन्न प्रकार की अभिव्यक्ति करने में सक्षम होती है। कला के माध्यम से हम विभिन्न प्रकार के अभिव्यक्ति का रसास्वादन करते है जो अध्यात्म से ओत–प्रोत होती है।

8.2 कला का वर्गीकरण (Classification of Art)

कला का परिचय – कला एवं अत्यन्त व्यापक शब्द है। प्राचीन काल से भारतीय भाषाओं में कला एवं इससे भी पूर्व से कला और शिल्प का प्रयोग हो रहा है। Art शब्द का प्रयोग तेरहवी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ, जिसका अर्थ बनाना, उत्पन्न करना या ठीक करना है।

कला का क्षेत्र बहुत व्यापक है और इस क्षेत्र में कई विद्वानों ने अपने मतों को प्रस्तुत भी किए है। 'कला' संस्कृति भाषा के "कल" धातु से उत्पन्न "कला" सुन्दरता और मंत्र मुग्धता को व्यक्त करती है। प्राचीन साहित्य में कला के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण भिन्नता है। "आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी" के अनुसार प्राचीन भारतीय साहित्यों में कला को महामाया का निन्मय – विलास कहा गया है।

कला का वर्गीकरण (Classification of Art)

कला को निम्मलिखित चित्रों से वर्गीकरण किया जा सकता है।

कला (Art)
- दृश्य कलाएँ (Visual Arts)
- प्रदर्शनकारी कलाएँ (Performing Arts)

दृश्यकला (Visual Arts)
- चित्रकला (Painting)
- मूर्तिकला (Sculpture)
- वास्तुकला (Architecture)

प्रदर्शनकारी (Performing)
- काव्यकला (Poetry)
- संगीत (Music)

8.3 दृश्य कला (Visual Art)

दृश्य कला का अर्थ एवं अवधारणा (Meaning and Concept of Visual Art) – दृश्य कला वह कला होती है जिसमें कलाकार जो कलाकृतियाँ बनाता है उनका दृश्य प्रभाव होता है अर्थात् उनमें दृश्य सौन्दर्य की

अनुभूति होती है तथा वे दृश्य के माध्यम से हीं भाव को अभिव्यक्त करती है। "Visual Arts are the such arts in which the article made by an artist create their effect visually it means they create visual experience of beauty and express fedings visually." दृश्य कला में उन सभी कलाओं को सभाहित किया जाता है। जिनमें कलाकार अपनी कलाकृतियों को इस प्रकार बनाता–सजाता एवं संवारता है जिससे वे दर्शक को नेत्रों के द्वारा आनन्द प्रदान करती है।

एक कलाकार अपने भावों एवं अनुभूतियों के प्रदर्शन हेतु अनेक प्रकार की कलाओं का उपयोग करता है। विद्वानों ने इस कलाओं को ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर तीन भागों में विभक्त किया है जो नीचे दिए गए चित्र में दिखाया गया है।

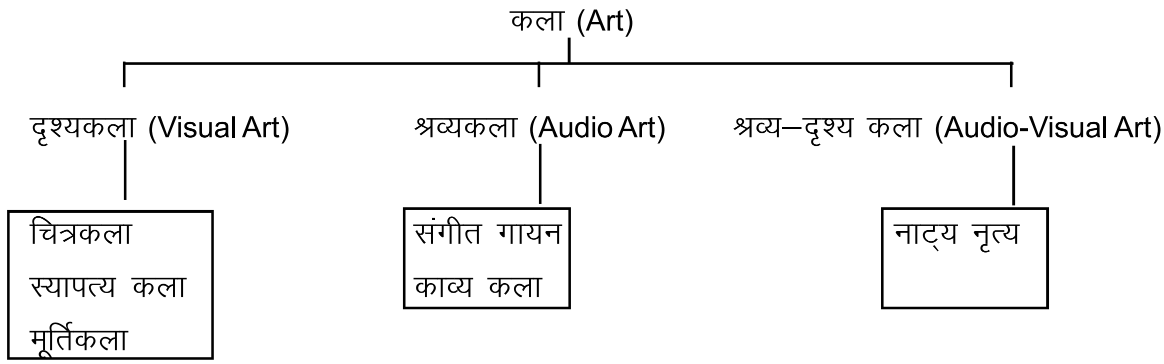

चित्रकला, स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला ऐसी कलाएँ है जो नेत्रों तृप्त करते हुए कलाकार एवं दर्शक को आनन्द प्रदान करती है। दृश्य कलाओं में एक आकार होता है, अतः इन साकार कलाओं को मूर्तिकला का नाम भी दिया गया है। दृश्य कला में कला की विषयवस्तु में लंबाई एवं ऊचाई का गुण पाया जाता है। दृश्यकला में कला का आधार कागज, वस्तु, चादर, पत्थर आदि होते हैं। इन्हें रंगों अथवा रेखाओं द्वारा सजाया जाता है।

कलाकार जिन वस्तु या परिस्थितियों को कल्पना में लाता है उसके उपरान्त रेखाओं के संयोजन और रंगों के सामंजस्य से उसी आकृति में बनता है व्यक्ति जितना कला–कौशल और तीक्षण बुद्धि से युक्त होता है। जिनमें सृजनात्मक क्षमता अधिक होती है वह अपनी चित्रों उतनी हीं अधिक सजीवता लाता है। इस लिए चित्रों में कल्पना और चितंन का समावेश होता है।

उपर्युक्त वर्णन के अनुसार, दृश्य कला वह कला होती है, जिसमें कलाकार जो कला कृतियों बनाता है उनका दृश्य प्रभाव होता है। जैसे – गारे, मिट्टी, ईट से सुन्दर महल बनाना, सोने से आभूषण बनाना, सुन्दर, मूर्ति बनाना, इस प्रकार की कलाकृतियाँ बनाना जिसे देखकर नेत्रों को आनन्द प्राप्त हो वह दृश्य सामग्री है ये दृश्य कलाएँ कहलाती है। जैसे – (1) मूर्तिकला (2) चित्रकला (3) वास्तुकला आदि।

(1) मूर्तिकला :– मूर्तिकला मूर्ति बनाकर अपने सपने को साकार करता है। मूर्तिकार मूर्ति को बनाते समय अपनी कल्पना से सजीवता काआभास करता है। मूर्तिकार मिट्टी, पत्थर, प्लास्टर ऑफ पेरिस, धातु, लकड़ी, नारियल पर मूर्ति बनाकर उन्हें सजाकर रंग भर कर उन्हें ऐसी बना देता है मानों मूर्ति सजीव रूप में बोल उठेंगे। मूर्तिकार विभिन्न देवी–देवताओं का मूर्ति का सजीव जैसा बनाते है जिसे अपनी कल्पना शीलता से रंग, आकार और भावना भर देते है। इसका उदाहरण हम तंजाऊर के मन्दीश्वर स्वामी के मंदिर की गणेश मूर्ति राव गरमनलमूर के विष्णु मंदिर की रति व कामदेव की मूर्ति आदि।

मूर्तिकला के विकास क्रम का अन्दाजा इसी से लगा सकते है कि मोहन जोदरो एवं हड़प्पा के उत्खनन में मूर्तियाँ से इसके विकास क्रम को जान सकते है। इसी का एक रूप पार्यकला है जिसमें पत्थरों को काटकर छाँटकर उन्हें कोई स्वरूप प्रदान किया जाता है अर्थात् मूर्तिकला के ये दो रूप हो गए है। एक ओर तो मिट्टी या धातु से मूर्ति को गठा जाता है दूसरी ओर पार्थ या काष्ठ कला में पत्थर या लकड़ी को काट छाँट कर उसे कोई स्वरूप प्रदान किया जाता है।

–> **भरहुत की मूर्तिकला** – भरहूत में स्तूप की पाषाण वेरूटानियों के सीचे खड़े स्तम्भों पर समस्त श्रेष्ठ भारतीय मूर्तिकला के समान यक्षों ओर यक्षियों की सुन्दरता से पूर्ण की गई एवं अत्यन्त अलंकारिक मूर्तियाँ खुडी हुई है परन्तु शैली प्राचीन एवं अनिश्चित है। उनकी कलाकारी से पता चलता है कलाकार हाथी दाँत का प्रयोग भी किए हैं। स्तम्भों में निर्मित गोलाकार मुद्राओं से भी जिनमें अधिकत्तर जातक कथाओं के दृश्य चित्रित है। इसी प्रकार की प्राचीनता का आभास मिलता है।

–> **गया की मूर्तिकला** – गया की पाषाण वेष्टानियाँ जो एक स्तूप के चारों ओर न होकर उस पवित्र पथ के चारों ओर है जहाँ ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त ध्यानमग्न बुद्ध ने भ्रमण किया था। बरहुत से प्रगति की ओर बढती प्रतीत होती है आकृतियाँ अधिक गहरी अधिक चेतना और अधिक गहरी, अधिक चेतन और अधिक गोलाकार हड़प्पा मूर्तिकारों ने इस समय तक स्पष्ट अपने कौशल में अधिक दक्षता प्राप्त कर ली थी।

–> **राँची की मूर्तिकला** – प्रारंभिक उत्तर भारतीय मूर्तिकला की महत्वपूर्ण सफलता निःसन्देह साँची हैं। यहाँ पर एक छोटा स्तूप अत्यन्त प्राचीन नक्काशी से सुसज्जित है, जो कुछ विद्वानों के अनुसार भरहुत से भी अधिक प्राचीन है। मुख्य स्तूप की पाषाण वेष्टनिया साज सज्जा रहित है। परन्तु इसकी डलना में विशाल प्रवेश द्वारों पर आकृतियाँ एवं उभरी हुई नक्काशी बनी हुई है उपर से नीचे तक और चारों ओर स्थूलचकौर स्तम्भ और तिहरें पादांग के लिए ब्रैकेट का काम करती है जो स्थूल हाथियों अथवा प्रसन्नता से दाँत निकाले हुए बौने पर टिके है। उध्वों और पादांगों का समतल धरातल ऐसे चौखटों से युक्त है जिनमें बुद्ध के जीवन अथवा जाटक कथाओं के दृश्य दिखाए गए है। साँची के प्रवेश द्वारों की नक्काशी किसी अनुमानित योजना के अनुसार नहीं हुई थी मूर्तिकारों की नियुक्ति धार्मिक मठो द्वारा न होकर निजी संरक्षकों द्वारा होती थी। प्रविधिक रूप में नक्काशी श्रेष्ठ कोटि की है, इस समय तक मूर्तिकारों ने अपने उपादानों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया।

–> **मथुरा शैली** – मथुरा शैली का प्रारम्भ सम्मवतः ई0 पूर्व शताब्दी के अन्त में हुआ यद्यपि कुछ विद्वान इसकी तिथि और बाद में निर्धारित करते हैं स्थानीय श्वेत चित्तीदार बलुए पत्थर पर शताब्दियों तक कार्य करते हुए इस शैली ने ऐसी कृतियों का उत्पादन किया जो दूर–दूर से लाई गई तथा जिनका उत्तरकालीन मूर्तिकला पर प्रभाव पड़ा। इस कला में जैन धर्म से भी प्रेरणा मिली। प्रांरभिक कला में मथुरा के कलाकार संकल्लित पट्टिया बनाते थे जिनमें एक ध्यान मग्न नग्न तीर्थकर की पालथी मारकर बैठी हुई आकृति बनी रहती थी जिसने बौद्धों को अपने गुरू को मुद्रा में प्रर्दशित करने की प्रेरणा दी होगी। मुख्य मथुरा कला शैली में लगभग बाहर कुषाणों की राजसी मूर्तियाँ है जिनमें से अधिकांश माट नामक ग्राम में मिली बाद में अधिकांश मूर्तियों नष्ट करवा दिया गया। यद्यपि मथुरा शैली प्रांरिभीक भारतीय परम्परा की बहुत ऋणी है, तथापि उसने उत्तर–परिचम का भी अनुकरण किया और एक से अधिक यूनानी रोमन चेष्टाओं को ग्रहण किया।

गुप्त शैली पर भी मथुरा शैली का प्रभाव दिखा।

–> **गन्धार शैली** – गन्धार शैली रोमन साम्राज्य की कला से प्रभावित थी। जब इस शैली का प्रार्दुभाव हुआ। इन भिन्न–भिन्न धार्मिक रीतियों का मिश्रण करने वाली शैली का श्रेय है सिकन्दर के यूनानी बैक्ट्रियन उत्तराधिकारियों को नहीं है अपितु पश्चिम से होने वाले व्यापार रोम की बठती हुई समृद्धि तथा पूर्व की ओर अग्रसर होने वाले उसके सैन्य दल को है। कनिष्क और उसके उत्तराधिकारियों ने गन्धार शैली को उसकी प्रगति के लिए सहायता दी थी। नवीन धर्म निष्ठ बौद्धि धर्म ने मूर्तिपूजा की माँग की और बुद्ध तथा बोधि सत्वों की असंख्य मूर्तियों का निर्माण हुआ।

इस शैली ने कला के विकसित परिदृश्य प्रदान किया। शास्त्रीय कसौटी पर गढ़े जाने के कारण भारतीय कला की सर्वश्रेष्ठ शैली समझी जाती थी, परन्तु अव गन्धार शैली की मूर्तिकला कभी–कभी केवल अनुकरण के रूप में तथा एक पतनोन्मुख महान कला की क्षीण अनुकृति के रूप में वर्णित की जाती है।

–> **अमरावती शैली** – ईसा से दो शताब्दी पूर्व कृष्णा और गोदावरी की निचली घाटियों के बीच का क्षेत्र बौद्ध धर्म का एक प्रमुख केन्द्र हो गया और कुछ अति पुरानी मुर्तियाँ जो कम उभरी नक्काशी से युक्त है और जो स्तूपों के पारवों को अलंकृत करने के उद्देश्य से बनी थी।

प्राचीन सातवाहन काल (दूसरी से तीसरी शताब्दी) में अमरावती का महान स्तूप चुने की नक्काशी से अलंकृत था। जिसमें बुद्ध के जीवन के दृश्य दिखाए गए है और जिसके चारों ओर मुक्त रूप से खड़ी हुई बुद्ध की आकृतियाँ है।

–> **गुप्त कालीन मूर्तिकला** – कला की दृष्टि से चौथी से छठी शताब्दी एवं सातवी शताब्दी के उत्तरार्ध तक का काल गुप्तकाल कहा जा सकता है।

इस काल की मूर्तिकला में निर्मलता, सुरक्षा एवं निश्चितता की भावना स्पष्ट प्रकट होती है। सारनाथ की सुन्दर बुद्ध मूर्तियाँ इसका उदाहरण मानी जा सकती है। गुप्तकालीन मुर्तिया इसका उदाहरण कालान्तर में भी रहा।

–> **बिहार और बंगाल की मूर्तिकला** – बिहार और बंगाल के पाल और सेन राजाओं के शासन काल में (आठवी से बारहवी शताब्दी तक) बौद्धों और हिन्दुओं दोनों ने सुन्दर मूर्तियाँ का निर्माण किया अधिकत्तर स्थानीय काले पत्थर का प्रयोग किया गया।

–> **उड़ीसा की मूर्तिकला** – उड़ीसा की मूर्तिकला पालों की मूर्तिकला से महान थी। भुवनेश्वर और कोणार्क के मंदिरों को नक्काशी मानव रूप के प्रति एक गहन सौन्दर्यानुभूति एवं स्पष्टता प्रदर्शित करती है जो उन्हें अपना विशेष सौन्दर्य प्रदान करती है।

–> **दक्षिण की मूर्तिकला** – दक्षिण की मूर्तिकला कला का अप्रतिम नमूने को दर्शाता है जिसमें अमरावती से प्राप्त हुई अधिक महत्वपूर्ण महामल्लपुरम की मूर्तिया है जो काँची के पल्लव राजाओं द्वारा निर्मित आर्श्चयजनक एवं जटिल चयन के मंदिरों को सुसज्जित किए है। प्रसिद्ध राजाओं और उनकी रानियों की आदर्श प्रतिमा को उभारा गया है।

(2) चित्रकला :– चित्रकला दो शब्दों से मिलकर बना है। चित्रकला अर्थात् वह कला जिसमें चित्र बनायें जाते है चित्रकला के माध्यम से अपने मनोभावों, सपनों, अनुभूतियों को प्रस्तुत करता है, हृदय की भावनाओं को रेखाओं

के माध्यम से प्रकट करके उन्हें रंगों द्वारा सुन्दर एवं सजीव बना देना हीं कला है। आन्तरिक भावनाओं व कल्पना की अभिव्यक्ति सुन्दर ढंग से करना विभिन्न प्रकार की कलाकृतियाँ बनाना और उनमें विभिन्न प्रकार के रंगों द्वारा तैयार करना हीं चित्रकला कहलाती है। जैसे आगरे का ताजमहल राधा स्वामी का मंदिर, अजन्ता एलोरा गुफाएँ आदि।

चित्रकला की परिभाषा

"किसी समतल धरातल जैसे भित्ति, काष्ठ फलक आदि रंगों तथा रेखाओं की सहायता से लंबाई, चौड़ाई, गोलाई को अंकित कर किसी रूप आभास कराना चित्रकला है।"

चित्रकला का क्रमिक विकास

- ❖ लगभग छः लाख वर्ष पूर्व मानव ने सुरक्षा हेतु हथियार बनाना सीखा।
- ❖ अपने जीवन के अनुभव, आखेट, पशु–पक्षियों की छवि आदि को नुकीले पत्थरों से गुफा की दीवारों पर उकेरना सीखा।
- ❖ खुरदरी दीवार, गुफाओं का फर्श उसके लिए प्रथम कॅनवास बने।
- ❖ पत्थर पर रेखाओं को खोद कर चित्रबनाए यह उत्तर पाषाण युग था इसी में चित्रकला के प्रथम प्रयोग हुए आज भी सुरक्षित है।
- ❖ कुछ चित्र प्रस्तर शिलाओं पर भी अंकित है।
- ❖ कुछ चित्रों में रेखा या सीमा रेखा की प्रधानता है।
- ❖ इनमें सुगमता से प्राप्त खनिजों रंगों का ही प्रयोग किया गया है।
- ❖ रंगों में प्रधान रूप से गेरू, हिरॉजी, रामरज तथा खड़िया के रंगों का प्रयोग है। कोयले का भी रंगों में प्रयोग होता है सीधी रेखा वक्र रेखा एवं आयत का प्रयोग किया जाता है।
- ❖ स्वास्तिक, त्रिभुज, वृत, षटकोण का प्रयोग आम है। उत्तरभारत में ग्राम धातु, सिंधु में कास्य धातु एवं दक्षिण में लौह–धातु का पहले प्रयोग किया गया।
- ❖ सम्पूर्ण भारत में लौह युग आया।
- ❖ सिंधु घाटी की सम्यता का काल 3500 ई0 पूर्व से 2500 ई0 पूर्व का माना जाता है।
- ❖ इस सम्पता में मिट्टी के पात्रों पर चित्रकला हुआ।
- ❖ इसी काल में गुलदस्ते, श्रृंगार मंजूषा, तस्तरियाँ, कटोरे आदि भी एवं खिलौने सीरियाँ, पुरूष, स्त्री आकृतियाँ पहियों वाला चिड़िया तथा रथ आदि भी मिले।
- ❖ साँप, मोर, बत्तख, ताड़ वृक्ष आदि का उल्लेख मिलता है।
- ❖ बुद्ध काल से भारतीय राज वंशों द्वारा पल्लवित चित्रकला प्रारम्भ हुआ।
- ❖ महाभारत काल में चित्रकला से संबंधित कथाएँ मिलती है।
- ❖ रामायण काल में भी कई स्थानों कलाओं में चित्र कलाओं का वर्णन मिला है।

भारतीय चित्रकला की प्रमुख विशेषताएँ :–

1. धार्मिकता :–

भारत की संस्कृति समूह है। यहाँ विभिन्न धर्मों के लोग मिलजुल कर रहते हैं। कला हीं हर देश में धर्म के बारे में बताया हर तीज, त्योहारों को कला के माध्यम से जीवन्त करते हैं। भारतीय चित्रकला तथा शिल्प लगभग तीन चार हजार वर्षों से धर्म से घनिष्ठ सम्बध बना रहा है। अतः भारतीय चित्रकला में धार्मिक भावनाएँ, प्रतीक, आदर्श रूप प्रतिमाएँ समाई हुई है जिससे भारतीय चित्रकला को एक मौलिक आदर्श रूप मिला जो सांसारिक रूप से सर्वथा लोकोपरि है। इसी कारण चित्रकला तथा अन्य कलाओं को परम आनन्द का साधन माना

गया है।

2. मानव अन्तः करण की भावनाओं की अभिव्यक्ति :—

कला के माध्यम से मानव अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त कर सकते है। अपनी अतः करण की भावना चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत करता है। जिस प्रकार भारतीय योगी ध्यान तथा समाधि की अवस्था को प्राप्त करके बाहरी तथा आन्तरिक प्रकृति अथवा प्रकृति के विस्तीर्ण क्षेत्र का एक स्थान पर बैठकर हीं साक्षात्कार कर लेता है इसी प्रकार भारतीय चित्रकार भी एक स्थान से हीं अनेक कालों एवं स्थानों अथवा सृष्टि की विस्तीर्णता को एक साथ ग्रहण करके व्यक्त कर देता है और इस प्रकार उसकी रचना में आकाश, पाताल तथा धरा की कल्पना सभाविष्ट हो जाती है। अतः चित्रकार अपनी अन्तः शक्ति की भावनओं को चक्षूक सीमा से परे अपनी कल्पना के आधार पर चित्रों के माध्यम से भरने का कार्य करता है।

3. चेतन तथा अचेतन जगत का समन्वय :—

चित्रकारों के अनुसार सम्पूर्ण चेतन—अचेतन जगत सृष्टि का अंग है, इस लिए उनकी रचनाओं में मानवीय और प्राकृतिक जगत का उद्भूत रूप दिखाई पड़ता है तभी तो भारतीय चित्रकला प्राकृतिक शक्तियों का चित्रण, पुरूष तथा नारी का सजीव चित्रण, दैवी घटनाओं से सम्बधित चित्रण वीरता की गाया का समन्वय दिखाई पड़ता है। भारतीय कला में सौन्दर्य का आधार प्राकृतिक जगत से प्रेरित जैसे नेत्रों की रचना, कमल, मृग अथवा मृणाल तथा मुख की रचना या आधारों की रचना, इतना ही नहीं चित्रों के माध्यम से जड़ और पशु में समान रूप से आत्मा की झलक दिखाई देती है।

4. आदर्शोन्मुख कल्पना :—

भारतीय चित्रकला कल्पना के आधार पर हीं विकसित हुई है, अतएव उसमें आदर्शवादिता का उचित स्थान है। चित्रकार अपने चित्रकारिता में देवी देवताओं के विविध रूपों को प्रदर्शित करने का प्रयास करते हैं।

5. प्रतीकों का विस्तृत प्रयोग :—

कला की भाषा प्रतीकात्मक होती है, पूर्वी देशों की कलाओं में भारतीय कला के समान ही यथार्थ आकृतियों पर आधारित प्रतीक तथा सांकेतिक प्रतीकों का अत्याधिक महत्व है। भारत की कलाओं में जटाजूट, मुकुट, सिहांसन, चक्र, सत्र, पादुकाएँ, कमल, हाथी आदि को भी भिन्न भिन्न रेखा चित्रों के माध्यम से दर्शाते हैं।

6. आकृति एवं मुद्राओं का समन्वय :—

भारतीय चित्रकला में आकृति और मुद्राओं का समन्वय किया गया है। यही कारण है कि अधिकांश भारतीय चित्रकला तथा मूर्तिकला में आकृतियों के शरीर की रचना में भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों की आकृतियों तथा उनकी अंग भेगिमाओं एवं मुद्राओं का विशेष महत्व है। जिसमें सजीवता को दर्शाया जाता है।

7. पात्रों का समन्वय होना :—

भारतीय कला में सामान्य पात्र—विधान परम्परागत रूप में विकसित किया गया है। सामान्य का अर्थ है आयु, व्यवसाय अथवा पद के अनुसार पात्रों की आकृति के अनुपात का निर्माण करना। राजा, रंक, देवता तथा राक्षस, साधु तथा सेवक स्त्री, गंर्ध्व, शिशु, किशोर, युवक आदि को उनके अंग प्रत्यंग के अनुपातों को निश्चित किया गया है। इतना हीं नहीं उनके आसन और पद चिन्ह भी निश्चित होते हैं।

8. अलंकरण :—

अलंकरण कला की प्रकृति है अतएव सुन्दर प्रथा आदर्श चित्र निरूपण के लिए अंलकरणों और आकृतियों की रूप श्री का वर्णन करता है, जैसे चन्द्र के समान मुख।

अजन्ता में छत्तों के अंलकरणों राजपूत तथा मुगल चित्रों के हाथियों में पुष्पों, पक्षियों, मानवाकृतियों, पशुओं तथा प्रतीक चिन्हों आदि को अंलकारिक रूपों में प्रस्तुत किया गया है। अजन्ता की चित्रकारी संसार में उत्तम अंलकारिता के लिए प्रसिद्ध है।

9. रेखा एवं वेग की प्रधाणता :–

भारतीय चित्रकला में रेखा का प्रयोग किया गया है। इन आकृतियों में सपाट रंगों का प्रयोग किया जाता है।

भारतीय चित्रकार की यह विशेषता है कि वह केवल शारीरिक अनुरंजन को चित्रकला का विषय न मानकर सांस्कृति, मानसिक और बौद्धिक विकास का ध्यान रखकर कला की रचना करता है।

प्रसिद्ध चित्रकार

राजा रविवर्मा, अवनीन्द्र नाथ ठाकुर, नन्दलालबसु, रविन्द्र नाथ टैगोर, मकबूल फिदा हुसैन, देवी प्रसाद राय चौधरी।

समकालीन चित्रकला (Contemporary Painting) समय के साथ–साथ पेंटिंग में भी अनेक प्रयोग हुए है। जैसे :–

प्रिंटिंग – इसमें एक बार डिजाइन का ब्लौक बनाकर मनचाही संख्या एवं मनचाही डिजाइन छापा जा सकता है।

कोलाज – एक हीं चित्र के माध्यम से कई चित्रों का आसान रंगों का प्रयोग कर चित्र बनाना।

पोस्टर्स – पोस्टर संचार का अद्भुत माध्यम है जो राजनीतिक और व्यवसायिक उद्देश्य से प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक पेंटिग्स – अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुगल, राजस्थानी एवं पहाड़ी शैलियों के विकासक्रम में स्वाभाविकता एवं फोटोग्राफीनुया अंकन की प्रवृति नजर आने लगी। अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी के लोग भारत आए इन्होंने भी विशेष रूचि पेंटिग्स में दिखाए डेनियर, टिलीकैटिला कई भारतीय विषयों पर चित्र बनाए।

2. वास्तुकला :– मंदिर, स्मारक, किले, भवन आदि के निमार्ण में वास्तुकला का विशेष योगदान रहता है, वास्तुकला में भी मूर्तिकला की भाँति मन पर चित्रित कई स्वरूप हीं कलाकार मूर्त रूप में सामने लाता है किन्तु इसमें उसे कुछ विशिष्ट नियमों का पालन करना पड़ता है।

इसे यांत्रिक कला (Mechanical Art) भी माना जाता है क्योंकि कुछ निश्चित नियमों के आधार पर यांत्रिक विधि से उसके नियम निरन्तर चलते रहते हैं। इसकी सामग्री तथा रूप में कोई भाव, विचार, किसी प्रकार के अनुभव सम्बधी प्रत्यय को केवल प्रतीक विधि से हीं हम पर आरोपित कर देते है, जैसे नुकीले शिखर को हम सांसारिकता की शनैःशनैः समाप्रि और आध्यात्मिक सूक्ष्मता की ओर गति का प्रतीक मानते हैं, सामान्य रूप में तो नुकीला शिखर छेद करने या चुमन को हीं अनुभूतिजगाता है। वास्तुकला के सम्बध में उक्त दृष्टि सार्वभौमिक रूप के साथ नहीं है पहली बात तो यह है कि वास्तु केवल यांत्रिक कला नहीं है।

भवन जो रहने के लिए बनाए जाते है भले हीं यांत्रिक कला की कोटि में गिने जाए, परन्तु पूजाग्रहों, स्मारकों आदि

का वास्तु मात्र यांत्रिक नहीं होता। वह यांत्रिकता की परिधि के पार स्वतंत्र कला रूप धारण कर लेता है। मूर्तिकला की डलना में इस कला की अधिकतम श्रेष्ठता आकाँ गया है। जो विद्वान पूर्वी देशों की वास्तुकला से परिचित है वे इसे भली प्रकार समझ सकते हैं। इसी कोटि के एक विचारक "जेम्स फर्ग्युसन" का कथन है कि मूर्ति में मानवाकृति अनुकृति का बन्धन रहता है जबकि वास्तुकला में विविधता की अनगिनत सम्भावनाएं रहती है। और इसमें मानव मन की उच्य आकांक्षाओं का लक्ष्य रहता है दूसरी बात यह है कि वास्तुकला में भवनों की जो विशालता का आभास होता है वह उस उदान्त अनुभव की ओर ले जाने में सहायक होता है जो केवल प्रकृति के विशाल और खुले प्रांगण में पहुँचने पर हीं सम्भव है।

वर्तमान में वास्तुकला का विकास काफी ऊचाई तक पहुँच गया है। भारतीय वास्तुविद् प्रारम्भ से हीं दिशा, गुरूत्वाकर्षण, सूर्य की स्थिति, काल एवं पंथ तत्व योजना को ध्यान में रखकर भवन निमार्ण करते थे। पश्चिमी देशों में भी इसको प्रोत्साहन मिला है।

8.4 प्रदर्शनकारी कला (Performing Art)

प्रदर्शनकारी कलाओं में वे सब कलाएँ आती है जो कि दृश्य माध्यम के अलावा कला का प्रदर्शन कर विभिन्न भावों को अभिव्यक्त किया जाता है। जिसमें कई कला के रूपों का समावेश है।

1. काव्यकला – काव्यकला में संप्रेत्य भाव और विचार के साथ कुछ और भी होता है। यही काव्य की पहचान है। अर्थात् जो चेतना को अपनी ओर खीचें वह सौन्दर्य है और जिसे चारूता भी कहा जाता है।

काव्य विभिन्न युगों और विभिन्न कवियों में काव्य प्रेरणा के मूलाधार भिन्न होते है जैसे ब्राह्म प्रकृति और जगत के किसी दृश्य, घटना परिस्थिति या अवस्था का प्रभाव, किसी अन्य व्यक्ति, आश्रयदाता, गुरू, आचार्य या मित्र की प्रेरणा, किसी विचार या जीवन दर्शन का अलौकिक प्रणय, विरह या शोक की अनुभूति।

काव्य–प्रकाश के रचयिता ने यश की प्राप्ति सम्पति लाभ, सामाजिक व्यवहार की शिक्षा रोगादि विपत्तियों का नारा, तुरन्त हीं उच्च कोटि के आनन्द का अनुभव और प्रेयसी के समान मधुर उपदेश देने को काव्य का प्रयोजन माना है। पाश्चात्य देशों में काव्य को कला प्रयोजन के सम्बध में कई मत सामने आए जैसे कला के लिए, जीवन के लिए जीवन में प्रविष्ट होने के लिए आत्मानुभूति के लिए आनन्द के लिए विनोद के लिए आदि।

2. संगीत – संगीत कला से सभी परिचित है। संगीत से आशय गायन–वादन तथा नृत्य से है। संगीत एक ऐसी कला है जिसका माध्यम ध्वनि तथा मौन है। गायन को संगीत के तहत गीत को रखते है। संगीत के सर्वमान्य तत्व में शामिल है पिच (Pitch) अर्थात् स्वर की ऊँचाई जिसे (Mulody) अर्थात् मार्धुय एवं Harmony अर्थात् एक रूपता Rhythm अर्थात् ताल एवं लय और स्वर संगीत के बारे में बात समय–समय पर समालोचना होती रही है।

भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास :– मान्यता है कि संगीत का प्रारम्भ सिन्धुघाटी की सम्यता काल में हुआ। इसकी पुष्टि प्राप्त प्रमाणों से होती है इस प्रमाण में उत्खनन में प्राप्त नृत्यागना की कांस्य प्रतिमा, संगीत के देवता रूप अथवा शिव की पूजा का प्रचलन। इस सभ्यता के पतन के बाद वैदिक कालीन सभ्यता में संगीत की शैली में भजनों एवं मंत्रों के उच्चारण से ईश्वर की पूजा–अर्चना की जाती थी। इसके उपरान्त महाभारत और रामायण काल में भी संगीत का पर्याप्त उन्नयन हुआ। कालिदास, तानसेन, अमीरखुसरों ने विशेष योगदान दिया।

स्वर :– संगीत के संदर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण शब्द है "स्वर"। संगीत में वह शब्द जिसका कोई निश्चित रूप हो और जिसकी कोमलता या तीव्रता अथवा उतारचढाव आदि का सुनते हीं सहज अनुमान हो सकें स्वतर कहलाता है। भारतीय संगीत में स्वरों की संख्या सात है – (1) षड़ज–स (2) ऋषभ–रे (3) गंधार–ग (4) मध्यम–म (5) पंचम–प (6) धॅवत–ध (7) निषाद–नि।

एक वैज्ञानिक शोध के अनुसार इन स्वरों का आधार कम्पन है, किसी वस्तु में 256 वार कम्पन – षड़ज $298^2/_3$ बार कम्पन – ऋषभ 320 बार कम्पन – गन्धार इसी प्रकार बढते–बढते 480 बार कम्पन – निषाद

इससे दुगुना कम्पन का अर्थ है उपर का सप्तक और आधे कम्पन का अर्थ है नीचे का सप्तक। मान्यता है कि सातों स्वर पशु पक्षियों के स्वरों से लिए गए है –

स – मोर, रे – गौ, ग – बकरी, म कौया, प – कोयल, ध – थोड़ा, नि – हाथी। इन स्वरों में, स और प शुद्ध स्वर है। शेष स्वर कोमल ओर तीव्र होते है। प्रत्येक स्वर दो–दो तीन–तीन भागों मे बँटा रहता है। जिनमें से प्रत्येक भाग श्रुति कहलाता है।

लय :– संगीत में स्वर का लय में निबद्ध होना अनिवार्य है। लय भि सप्तकों के समान तीन स्तरों से गुजरती है, सामान्य लय को मध्य लय कहा जाता है। सामान्य से तेज लय को द्रुत लय एवं सामान्य से कम लय को विलिम्बत लय कहा जाता है।

ताल :– समय को बराबर मात्रा में बाँटने पर ताल बनती है, ताल को बार–बार दुहराया जाता है और हर बार अंतिम टुकडे का पूरा कर समय के जिस टुकड़े से शुरू हुआ इसी पर आकार मिलती है।

हर टुकड़े को मात्रा कहा जाता है। संगीत के समय को मात्रा से मापा जाता है। उदाहरर्णाथ – तीन ताल में समय लय के 16 टुकड़े या मात्राएँ होती है। हर टुकड़े को एक दिया जाता है जिसे बोल कहते है। ताल की मात्राओं को विभिन्न भागों में बाँटा जाता है, जिससे गाने या बजाने वाले को मालूम रहे कि वह कौन सी मात्रा पर है और कितनी मात्राओं के बाद सम पर पहुँचेगा।

तालों में बोले के छंद के हिसाब से उनके विभाग किए जाते हैं जहाँ से चक्र दोबारा प्रारम्भ होता है, उसे सभ कहा जाता है। ताल में खाली व भरी दो महत्वपूर्ण शब्द है जिस भाग पर बोल के हिसाव से अधिक बल देना है उस भाग को भरी कहते है।

लयात्मक गायन का अभ्यास

लय की परिभाषा :– लय एक ऐसा शब्द है जिसका अर्थ असीमित, अपरिमित तथा व्यापक है जिस प्रकार धर्म या योग शब्द भीमांसा का विषय है, उसी प्रकार लय भी विस्तार है लय का सांख्य, योग, अध्यात्म, वेदान्त भक्ति, विज्ञान, साहित्य संगीत वाध तथा नृत्य आदि सभी विषयों में समान चरण होता है। एक विद्वान के मतानुसार लय को काल भी कहते है।

काल अव्यक्त है। जब उसे व्यक्त करते है तो वह व्यतीत होता है, इस व्यक्त से व्यतीत किया को लय कहते हैं।

भवभूति ने लय की महत्ता बतलाते हुए निम्नालिखित श्लोक लिखा है –

"पूजा कोटि सभं स्तोत्र, स्तोत्र–कोटिसमोजप जप–कोटि सभं ध्यान, ध्यान कोटि समोलयः। अन्य विद्वानों के मतानुसार, समस्त जीवों में जो श्वासोच्छवास की क्रिया होती है, उसी स्वभाविक एवं प्राकृतिक क्रिया को लय

कहते है, योग के अनुसार वाणी की चार स्थितिया होती है—परा, परयन्ति, मध्यमा और वैखरी

परा की स्थिति में वाणी अव्यक्त रूप से स्थिति रहती है, जब कि परयन्ति की स्थिति में वाणी व्यक्त भी होती है और अव्यक्त भी अर्थात् व्यक्त व अव्यक्त के सान्निध्य स्थल पर परयन्ति होती है। मध्यमा में वाणी पूर्णतः व्यक्त होती है, वैखरी की स्थिति में वाणी मुखोन्द्रिय द्वारा स्पर्शित होकर अभिव्यक्त होती है यह वाणी शक्ति का आरोह है। इसके विपरीत वाणी वैखरी से मध्यमा, मध्यमा से परयन्ति और परयन्ति से परा की स्थिति में स्थापित करना हीं वाणी का अवरोध है। व्यावहारिक दृष्टि से एक या अनेक वस्तुओं का जब इस प्रकार मिलन हो कि सभी का अस्तित्व एक हो जाए तो उसे ही लय कहा जाता है।

संगीतशास्त्र में भी लय शब्द का प्रयोग इसी संदर्भ में होता है। संगीत की क्रिया में एकाकी की अपेक्षा सामूहिकता अधिक होती है।

इसलिए गायन, वादन तथा नृत्य इन सभी क्रियाओं का एक हीं गति में संचालन हेतु लय का होना अनिवार्य है। अन्ततोगत्वा जिस गति में संगीत की क्रिया संचालित होती है, उसे हीं लय कहते है। इसकारण संगीतशास्त्र में लय का प्रयोग संगीत की गति के लिए हीं होता है।

संगीत में लय चार प्रकार की मानी जाती है – (1) विलम्बित (2) मध्य (3) द्रुत (4) अतिद्रुत ।

विलम्बित लय की परिभाषा

विलम्बित शब्द विलम्ब का विश्लेषण है, जिसका अर्थ है – देर से। संगीत में गायन, वादन तथा नृत्य की क्रिया को अपेक्षाकृत धीमी या मन्द गति से करने को विलम्बित लय कहा जाता है। वेदान्ताचार्य विद्वानों के मतानुयार ऋगवेद का पाठ द्रुत लय में अर्थात् चार अक्षरों की एक मात्रा मानकर किया जाता है जबकि सामवेद का गायन विलम्बित अर्थात् सोलह अक्षरों की एक मात्रा मानकर किया जाता है। इसलिए उपर्युक्त उदाहरण में सोलह अक्षर के उच्चारण काल को एक मात्र मानकर जो लय व्यवहार में ली जाये उसे विलम्बित लय कहते हैं। गायन में इसका व्यवहार बड़े ख्याल में होता है। ऐसी परिस्थिति के समिवेश को हीं विलम्बित लय की संज्ञा दी जाती है।

मध्य लय की परिभाषा

मध्य लय के विषय में भी शास्त्रों से प्राप्त अनुभव के आधार पर विवेचना की जा सकती है। मध्य शब्द का अर्थ होता है दिन का मध्य भाग अर्थात् बीच वाला जिसके द्वारा कोई कार्य सपन्न हो।

इसी प्रकार मध्य देश का अर्थ होता है शरीर का मध्य भाग। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध विज्ञान वेता न्यूटन ने प्रमाणित किया था कि दो पिण्डों के बीच यदि कोई बाधक वस्तु न हो तो एक विशेष शक्ति द्वारा वे पिण्ड पराचर आकर्षित होते है इस शक्ति को महत्वाकर्षण शक्ति कहते है।

गीता में भी कहा गया है – "सेन याईन मर्योम्ध्ये स्थापन स्थोप्तमम्।

गीत अध्याय श्लोक (24)

इस प्रकार अर्जुन की बात सुनकर सारथी श्री कृष्ण ने दोनों सेनाओं के मध्य में रथ को खड़ा कर दिया था। अतः मध्य का शब्दार्थ है दो वस्तुओं के बीच।

संगीतशास्त्र के अनुसार गायन, वादन तथा नृत्य की क्रिया में विलम्बित लय तथा द्रुत लय के बीच की लय को अर्थात् विलम्बित लय को कायम रखकर बीच की लय में गाकर बतलाने की क्रिया को कलाकार मध्य

लय के नाम से पुकारते है। इस मध्य लय में गायन, वादन और नृत्य के कलाकार प्रेमपूर्वक तथा भयरहित होकर गाते बजाते और नृत्य करते हैं। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि संसार का प्रत्येक कार्य मध्य लय से हीं संचालित होता तथा चलता है।

द्रुत लय की परिभाषा

मध्य लय से दुगुनी अर्थात् चार अक्षरों के उच्चाख काल को एक मात्रा मानकर जो लय व्यवहार में लायी जाती है उसे द्रुत लय कहते है। गायन में छोटे ख्याल से गराने तक इसका व्यवहार वादन तथा नृत्थ में कलाकार अपनी तैयारी के लिए विलम्बित लय को कायम रखकर विलम्बित लय तथा मध्य लय को ध्यान में रखते हुए तीसरी तर्ज में लय में बजाकर बतलाने की क्रिया को द्रुत लय कहते है।

अतिद्रुत लय की परिभाषा

द्रुत लय से दुगुनी गति अर्थात् दो अक्षरों के उच्चारण काल को एक मात्रा मानकर जो लय व्यवहार में ली जाए उसे अतिद्रुत लय कहते है। अब इस अतिद्रुतलय शब्द के भाव को कुछ विशेष प्रकरणों के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। मनुष्य तथा मनावेतर प्राणी अपनी स्वयं की शक्ति के अतिरिक्त भी कुछ अमानुषी शक्ति का प्रयोग करते हुए तथा उसका प्रभाव दशार्तें हुए पाये जाते है। ऐसे समय में दर्शकों तथा श्रोताओं के ह्यदय में कम्पन तथा घबराहट स्वयं में उत्पन्न हो जाती है। वे प्रदर्शक के सन्दर्भ में कहने लगते हैं – "इसने अति पराक्रम करने बताया। यही है अति पराक्रम करने बताया।" यही है अति शब्द का परिचय। संगीतशास्त्र में कलाकार अपनी स्वाभाविक शक्ति से भी अधिक लय की गति का प्रयोग करते है।

इसे हीं अतिद्रुत लय की संज्ञा प्रदान की जाती है। संगीत शास्त्रकारों के अनुसार गायन, वादन एवं नृत्य में कलाकार अपने विलरूण व्यक्तित्व से समाज को प्रभावित करने के लिए अति मानवीय लय शक्ति का प्रयोग करते है। इसे हीं अति द्रुत लय कहते है। इसकी कल्पना सितार और तबला वादन के कलाकारों से प्रदर्शित कला से अनुभव करते है।

मात्रा :– मात्रा को परिभाषित बाधों में लगने वाले समय से करते हैं। व्यंजनों के साथ स्वरों को मिलाते समय वर्ण के जो चिह्न लगाते है उन्हें मात्रा या वर्ण के चिह्न कहते है। मात्रा शब्द के अनेक अर्थ है।

आवर्तन :– आवर्तन शब्द से आशय पुनः पुनः याद करना, दुहराना, परिक्रमा करना इत्यादि। आवर्तन को सनातन धर्म में परिक्रमा कहते है अर्थात् जिस स्थान से चले उसी स्थान पर वापस आना आवर्तन या परिक्रमा है। वैसे हीं संगीतशास्त्र के अनुसार गायन, वादन तथा नृत्य में सम से सम तक किसी भी विषय को लेकर उसी की पुनरावृति करना और एक विषय को अनेक प्रकार से प्रकट करते हुए कई बार घुमकर फिर समं आया।

सम :– 'स' वर्ण हिन्दी वर्णमाला का बतीसवॉ व्यंजन है। इसका उच्चारण स्थान दन्त है इसलिए यह दन्ती "स" कहा जाता है। इसी 'स' व्यंजन वर्ण से समं की उत्पत्ति हुई है। 'स' एक अग्यय वर्ण है। जिसका अर्थ व्यवहार में समानता संगति को उत्कृष्टता, श्रेष्ठता, उत्तमता निरन्तरता आदि सूचित करने के लिए शब्द के आरम्भ में उपयोग होता है। उदाहरण के लिए संयोग, संताप, सन्तुष्ठ, संयम, सरस्वती स्वर आदि। कभी–कभी इसे जोड़ने पर भी मूल शब्द का अर्थ ज्यों का त्यों बना रहता है। स्व का मतलब होता है दूसरों पर निर्भर नहीं अर्थात् अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं पड़ती है। संगीतशास्त्र में सम से आराम एक हीं संगीत लय को बनाए रखना।

संगीत सम्बधी पारिभाषिक शब्द कोश

→ **अचल स्वर** – जो स्वर अपने स्थान से स्थूल रूप से ऊँचे या नीचे नहीं होते।

→ **अनाहृत नाद** – उपासना द्वारा अनुभव में आनेवाला अतिसूक्ष्म स्वयं भू नाद।

→ **अनुवादीरूर** – वादी और संवादी के व्यक्तित्व।

→ **अलंकार** – सौन्दर्य उत्पन्न करने वाला विशिष्ट स्वर या वर्ण समुदाय।

→ **अवनह** – चमड़े से मढा हुआ।

→ **आरोह** – स्वरों का मन्द सप्तक नीचे की और उतार अवरोही अवरोहन।

→ **आड़ या आड़ी लय** – मध्य लय से डेढ गुनी।

→ **आयोग** – ध्रुवयद, धमार, गान का अंतिम भाग।

→ **अलाप** – राग स्वरों का विस्तार।

ताल :– संगीत में समय नापने को साधन को ताल कहते हैं। ताल अनेक विभाग और मात्राओं से बनता है। ताल शब्द तल धातु से बना है। संगीत रत्नाकार के अनुसार जिसमें गीत, वाद्य और नृत्य प्रतिष्ठित होते है वह ताल है, प्रतिष्ठा का अर्थ है। व्यवस्थित करना। आधार देना या स्थिरता प्रदान करना। तबला, पखावज आदि वाद्यों से जब गाने के समय को नापा जाता है तो एक विशेष प्रकार की अन्नदानुभूति होती है। वास्तव में ताल, संगीत का प्राण है । लय मात्रा और ताल में समन्वय का आभाव हो तो वह संगीत के लिए उपयोगी नहीं हो सकता है।

ताल से अनुशासित होकर हीं संगीत विभिन्न भाव और रसों को उत्पन्न कर पाता है। ताल की गतियॉ स्वरों की सहायता के बिना भी रस निष्पति में सक्षम होती है। संगीत में व्यवस्था का संपादन ताल द्वारा हीं होता है। ताल के लिए ढोल, मृदंग, तबला, झांझ, मजीरा, करताल आदि कई वस्तुएं प्रयुक्त होती है।

विद्वान शास्त्रकारों ने संगीत को मुख्य दो भागों में वर्गीकृत किया है –

(1) मार्गी संगीत और (2) देशी संगीत। संगीत को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है।

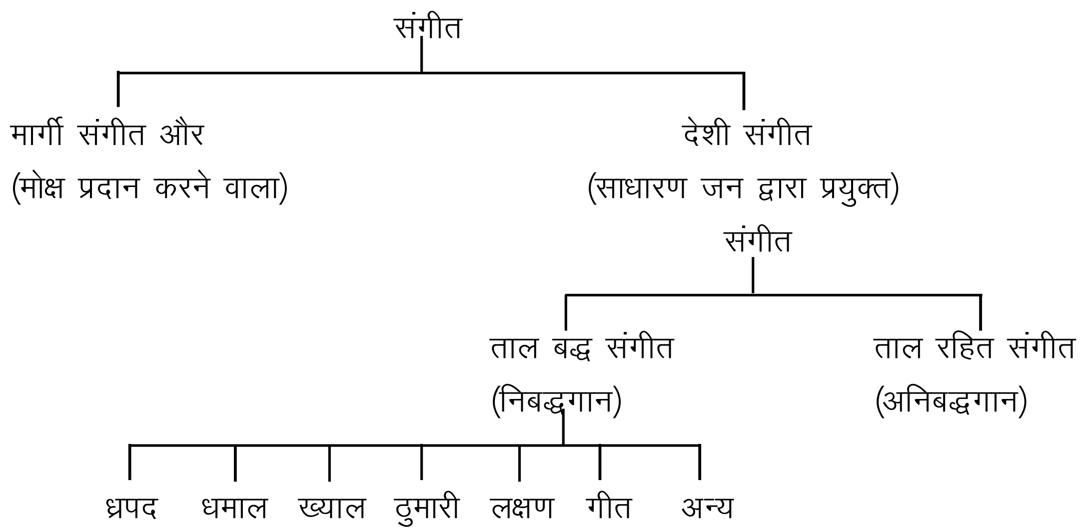

मोक्ष प्रदान करने वाले संगीत को मांर्गी संगीत कहते हैं। साधारण जनता में प्रयोग किया जाने वाला संगीत को देशी संगीत कहा जाता है।

गंधर्व लोग मार्गी संगीत का प्रयोग करते थें। वर्तमान समय में मार्गी संगीत का स्वरूप बदला है।

ताल बद्ध संगीत और ताल रहित संगीत ताल में बंधे हुए गान (देशी संगीत) को निबद्ध गान और ताल रहित गान को अनिबद्ध गान कहते है।

अनिबद्ध गान का केवल एक प्रकार है : आत्मा और निबद्ध गाने के कई प्रकार है उदाहरण के लिए ध्रुपद धमार, ख्याल, ठुमरी, लरूण, गीत आदि निबद्ध गान के विभिन्न रूप है।

गीत, स्वर और लय ताल बद्ध शब्दों की सुन्दर रचना को गीत कहा जाता है। गीत शब्द सार्थक और निरर्थक दोनों ही प्रकार के हो सकते है। भजन, गीत, ठुमरी तथा ख्याल के शब्द सार्थक होते हैं और तराने के शब्द नोम, तोम, तनन, देरे आदि निरर्थक होते है। उस्ताद अमीर खाँ के अनुसार तराना के शब्द अरबी फारसी भाषा के लिए गए है, और इनका भी अर्थ होता है।

गीत के हिस्से को अवयव कहते है। प्राचीन धुपरों के चार अवयव पाये जाते है।

ध्रुपद

स्थायी | अन्तरा | संचारी | आर्याय

गीत के अन्य कई प्रकार हैं –

ख्याल, तराना, ठुमरी आदि के केवल अवयव होते है। स्थायी और अन्तरा ध्रुपद – ध्रुपद का इतिहास स्पष्ट है कि नई 13वीं सदी तो कई 15वीं सदी मानते है। ध्रुपद न धुपद का इतिहास को स्पष्ट तौर पर जानना विवादित है कई 13वीं सदी तो कोई 15वीं सदी मानते है।

कुछ विद्वानों का मत है कि ग्वालियर के राजा मानसिह तोमर ने इसकी रचना की। ध्रुपद गम्भीर प्रकृति का गीत है इस गाने में कण्ठ और फेफड़े पर बहुत अधिक बल पड़ता है। इसलिए इसे मर्दाना गीत भी कहते है।

अधिकांश ध्रुपद के चार भाग होते है।

स्थायी, अन्तार, संचारी और अगामी। इसके शब्द अधिकतर ब्रज भाषा के होते है। इसमें नीररस और श्रृंगार रस की प्रधानता होती है इसकी संगत ऐसे परबाबज पर अच्छी जमती है, लेकिन अब अधिकतर लोग तबला पर संगत करते है।

प्राचीनकाल में ध्रुपद गान वाले को कलावन्त कहा जाता था। खमजा राग प्रचलित गीत राजत रधुवीरधीर भज्जन भवभीर पीर ध्रुपद का हीं उदाहरण है।

धमार–धमार गीत ताल में होते है यह अति प्राचीन गीत है इसमें अधिकतर राधा कृष्ण और गोपियों की होली का वर्णन मिलता है।

इस लिए कुछ विद्वानों ने धमार को होली के रूप में वर्णन किया है। इसमें दुगुन, तिगुन, चौगुन आदि लयकारियाँ अधिकतर गीत के शब्दों द्वारा प्रस्तुत की जाती है। लेकिन इसमें खटके अथवा तान के समान स्वर समूह वर्ज्य है। कुछ संगीतकार धमार में सरगम भी बोलते है इसमें ख्याल से भिन्नता होती है।

ख्याल – ख्याल का अर्थ कल्पना होता है। ख्याल को परिभाषित करने के लिए गीत का वह प्रकार जिसमें अलाप, तान, खटका, कण आदि विभिन्न अलंकारों द्वारा किसी विशिष्ट राग में उसके नियमों का पालन करते हुए भाव को अभिव्यक्त करते है। ख्याल दो प्रकार के होते है। (1) विलम्बित ख्याल (2) द्रुत ख्याल विलम्बित ख्याल।

ठुमरी – ठुमरी में भाव को अधिक प्रधानता दी जाती है। इसकी प्रकृति ख्याल से चपल होती है। ठुमरी, खमाज, देश, तिलक, कामोद, तिलंग, पीलू, काफी, भैरवी, झिझोटी जोगिया आदि रागों में गाई जाती है। ठुमरी में श्रृंगार रस की प्रधानता है।

स्थाई – विद्वानों का अनुमान है कि शताब्दी पूर्व इसका आनिष्क लखनऊ के अंतिम नबाव वाजिद अलीशाह अस्तर किया ने किया था।

टप्पा – इसमें शब्द अधिकतर पंजाबी भाषा के होते है इसकी प्रकृति बहुत चपल होती है। (1) स्थाई (2) अन्तरा इसमें खटका, मुर्की, कण आदि का प्रयोग अधिकता से होता है।

भजन – जिन गीतों में ईश्वर की बन्दना होती है उसे भजन गीत कहते है शब्दों के भाव पर विशेष ध्यान दिया जाता है। ख्याल के समान अलाप की आवश्यकता होती है।

नृत्य कला :– नृत्यकला प्राचीन काल से हीं नृत्य व संगीत देव दासियों द्वारा तथा देवालयों में किया जाता था लेकिन विकास के साथ–साथ यह कला देवालयों से निकलकर राज दरवारों में आ गई। आधुनिक समय में इसमें कई स्वरूप में विकास देखने को मिलते हैं जैसे कत्थक, भरतनात्यम्, कथककली, मणिपुरी, कुचिथुड़ी, ओडिसी नृत्यशैली आदि।

(1) कत्थक – यह नृत्य उत्तरभारत का प्रसिद्ध शास्त्रीय नृत्य है। इस नृत्य का उद्‌भव भगवान कृष्ण से होने के कारण इसे नटवरी नृत्य भी कहा जाता है। इसमें पदसंचालन सुन्दर मुखाकर्ष का समन्वय देखने को मिलता है।

(2) भरतनाट्‌यम – दक्षिण भारत की नृत्य शैली है। इस नृत्य की उत्पत्ति भारत द्वारा रचित नाट्‌यशास्त्र से हुई है इसलिए इसे भरतनाट्‌यम कहा जाता है। इस नृत्य में कविता, संगीत, नृत्य और नाट्‌यशैलियों का अद्‌भूत समावेश है।

(3) कथककली – कथककली कर्नाटक और मालावार प्रान्त की प्राचीन नृत्य शैली के रूप में प्रसिद्ध है। कथककली में सामूहिक नृत्य होता है जिसमें कुछ कलाकार, नर्तक एवं कुछ अन्य गायक वादक तथा विन्यास सजाने के लिए होते है। पाख गायन के माध्यम से उस कथा का वर्णन किया जाता है।

(4) मणिपुरी – मणिपुरी नृत्य पूर्वी बंगाल तथा असम की नृत्य शैली है। मणिपुरी नृत्य को हीं वास्तव में लाईहरोबा तथा रासन्तरय के रूप में जाना जाता है। मणिपुर प्रदेश मे इसकी लोकप्रियता के कारण मणिपुरी नृत्य कहा जाता है।

(6) कुचीपुड़ी – कुचिपुड़ी आन्ध्रप्रदेश का प्रसिद्ध नृत्य है। इस नृत्य का मुख्य उद्देश्य नृत्य के माध्यम से वैदिक एवं उपनिषदों में वर्णित धर्म एवं अध्यात्म का प्रचार प्रसार करना।

(7) ओडिसी नृत्य – भगवान जगन्नाथ को समर्पित है इस नृत्य का मुख्य भाव समर्पण एवं अराधना होता है। इसमें नेत्र संचालन ग्रीवा संचालन हस मुद्रा में पद संचालन पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

(8) मोहिनी – अहम नृत्य मोहिनी अर्थात् मन को मोहनेवाला अर्थात् ऐसा माना जाता है कि यह नृत्य भगवान विष्णु ने मोहिनी रूप में केरल में सागर के तट पर किया था। इसलिए इसे मोहनी अहम के रूप में जाना जाता है।

(9) छऊ नृत्य – बंगाल में पुरूलिया बिहार में सरई, केलरा एवं उड़ीसा में म्यूरमंज में छऊ के नाम से इस नृत्य को जाना जाता है। इस नृत्य का आयोजन चैत्र पूर्व पर किया जाता है। छऊ नृत्य में प्रत्येक अंग का अलग ढंग से प्रदर्शन किया जाता है।

प्रमुख लोकनृत्य

चहा नृत्य, शसलीला, होलीनृत्य, थालीनृत्य, मांगड़ा, गिद्धा डौडिया नृत्य, दीपक नृत्य पनिहारि नृत्य, थली नृत्य कालरी, भरतनृत्य, पादायनी, कठपुतली नृत्य, गीदड़ नृत्य आदि।

8.5 कला का शैक्षिक मूल्य (Educational Value of Art)

कला हमारे संस्कृति का संरक्षण और संबहन करती है। कला से ही विद्यार्थी बहुपक्षीय विकास होता है। इसे कई बिन्दुओं से वर्णन कर सकते है।

1. कला बालकों को अच्छे निर्णय लेना सीखाती है, जिससे बालक अपने साथियों के साथ गुणात्मक सम्बध बनाते हैं।
2. कला बालकों को किसी भी समस्या का हल कई प्रकार से करना सिखाती है और एक प्रश्न के अनेक उत्तर भी हो सकते है। ये बालक को जानने का मौका मिलेगा।
3. कला बालकों में विभिन्न दृष्टिकोण को विकसित करती है किसी भी कलाकृति को दुनिया को बहुत तरीकों

से समझाया जा सकता है और व्याख्या की जा सकती है।

4. कला बालकों को सीखती है कि समस्या समाधान का जटिल तरीका यदा–कदा हीं होता है लेकिन इससे परिस्थितियों और अवसर परिवर्तित हो जाते है। कला अधिगम में योग्यता और इच्छा की आवश्यकता होती है तभी अप्रत्याशित संभावनाओं में कार्य किया जा सकता है।
5. कला ऐसे विविद्य सत्यों और तजों को प्रकट करती है जो शब्दों से नहीं प्रकट किए जा सकते है और नहीं संख्याओं से प्रकट किए जा सकते है।
6. कला बालकों को सूक्ष्म अन्तर करना सीखाती है।
7. विकसित कला बालकों को सृजनात्मक क्षमता को विकसित होने में मदद करती है।
8. बालक किसी बात को भावात्मक और कलात्मक तरीके से किसी को समझा सकती है।
9. कला से उन अनुभवों की प्राप्ति होती है जो अन्य किसी श्रोत से प्राप्त नहीं हो सकते।
10. कला अधिगम वातावरण को अन्वेषणात्मक बना देती है।
11. सभी शैक्षिक स्तर के विद्यार्थियों के लिए चुनौती प्रस्तुत करती है। विद्यार्थी स्वनिर्देशन से सीखने में सक्षम होती है।

8.6 सारांश (Summary)

दृश्य कला की प्रकृति अपने आँखों से कला को अनुभव किया जाने से है। दृश्य कला में मूर्तिकला के माध्यम से मूर्तिकार अपने कल्पना को विभिन्न रेखा–चित्रों की आकृति बनाकर साकार करता है।
वास्तुकला में विभिन्न किलों भवनों और मंदिरों का निर्माण कर इसके विभिन्न कला को दर्शाया जा सकता है।
चित्रकला रेखाचित्रों, रंगों के समन्वय से इस कला को आकार प्रदान किया जाता है।
प्रदर्शनकारी कला में अपनी कला कौशल के माध्यम से अपनी भावनाओं को गायन, वादन और नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। गायन में विभिन्न सूरों और लय ताल का समावेश किया जाता है। वादन में वाध्य यंत्रों से भावनाओं को आवाज दी जाती है। नृत्य में नृत्यकार अपनी भाव–गरिमा और शारीरिक अभ्यास को दशार्ते हैं। कला के शैक्षिक महत्व आज के परिवेश में बढ गया बालकों की सृजनात्मक क्षमता और कल्पना शक्ति को बढाकर शिक्षण में उन्हें सक्रिय किया जाता है।

8.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. दृश्य कला क्या है? इसके विभिन्न उपागमों का वर्णन करें।
   What is visual art? Discuss its different approaches.
2. प्रदर्शनकारी कला क्या है? इसके विभिन्न स्वरूपों को बताए।
   What is performing arts? Discuss its different forms.
3. संगीत क्या है? इसके विभिन्न रूपों का वर्णन करें।
   What is music? Discuss its different forms.
4. चित्रकला क्या है? भारतीय चित्रकला की प्रमुख विशेषताओं का विवेचना कीजिए।
   What is painting art? Discuss the characteristics of Indian paintings.

8.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. राखी पब्लिकेशन : शिक्षा में नाटक, कला एवं सौन्दर्यशास्त्र, आन्शवना सक्सैना, सुशील सरिल।
2. अग्रवाल पब्लिकेशन, कला और शिक्षा, सत्यम त्रिपाठी।

इकाई : 9 शिक्षण एक कला के रूप में
Unit : 9 Teaching as an Art

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

9.0 उद्देश्य (Objective)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

9.2 शिक्षण का अर्थ (Meaning of Teaching)

9.3 शिक्षण का उद्देश्य (Purpose of Education)

9.4 शिक्षा कला के रूप में (Teaching in the Form of Art)

9.5 शिक्षा में कला का स्थान (The Place of Art in Education)

9.6 शिक्षण एक कला और विज्ञान (Teaching as an Art & Science)

9.7 सारांश (Summary)

9.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

9.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

9.0 उद्देश्य (Objective)

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- ❖ शिक्षण के अर्थ को जान सकेंगे।
- ❖ शिक्षण के उद्देश्य से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ शिक्षण में कला के स्थान को जान सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है ।

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस पाठ के माध्यम से भावी शिक्षकों को यह बताना है कि शिक्षण एक कला है। शिक्षण का विकास सृजनात्मक विचार से होता है। शिक्षक एक कलाकार होता है जो विभिन्न प्रकार के माध्यमों का उपयोग कर शिक्षार्थी को पाठ से अवगत कराता है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि शिक्षण क्रिया में विज्ञान

एवं अन्य अनुशासित विषयों (Discipline) का भी उपयोग होता है। फिर भी शिक्षण एक कला है वर्त्तमान समय में एक शिक्षक को आवश्यकता है कि वह किस तरह से शिक्षण को रूचिकर बना सकता है शिक्षकों द्वारा कक्षा में नए गतिविधियों और सृजनात्मक कार्य शिक्षार्थी को सोचने और समझने के लिए उत्सुक करता है। शिक्षक हमेशा विद्यार्थी बना रहे तभी वह शिक्षक रहता है। शिक्षक बनने के बाद भी सीखने और ज्ञान वर्द्धन को प्रवृति रहनी चाहिए।

इस इकाई में शिक्षण के उद्देश्य की चर्चा विस्तारपूर्वक की गई है। 'शिक्षण कला के रूप में' इसकी चर्चा भी विस्तारपूर्वक की गई है।

9.2 शिक्षण का अर्थ (Meaning of Teaching)

शिक्षण अर्थ ज्ञान प्रदान करने से लगाया जाता है। बालक को किसी भी ढंग से ज्ञान प्रदान किया जाए उसे शिक्षण शब्द की संज्ञा दी जाती है। शिक्षण शब्द अंग्रेजी के टीचिंग (Teaching) शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। शिक्षण से अभिप्राय सीखना है।

"डॉ0 राधाकृष्णन" के अनुसार "शिक्षा को मनुष्य और संपूर्ण समाज का निमार्ण करना चाहिए। इस कार्य को किए बिना शिक्षा अपूर्ण है।"

"रायवर्न के अनुसार, "शिक्षा के तीन केन्द्र बिन्दु है – अध्यापक बालक और विषय। शिक्षण इन तीनों में स्थापित किया जाने वाला संबंध है।"

"कलार्क" "शिक्षण वह प्रक्रिया है जो शिक्षार्थी के व्यवहार में परिर्वतन लाने के लिए नियोजित तथा संचालित की जाती है।"

1. शिक्षण बालक के व्यवहार में परिवर्तन करने की प्रक्रिया है।
2. शिक्षण एक उद्देश्य पूर्ण प्रक्रिया है।
3. शिक्षण सामाजिक एवं व्यवहारिक प्रक्रिया है।
4. शिक्षण विकासात्मक प्रक्रिया है।
5. शिक्षण एक तार्किक क्रिया है।
6. शिक्षण आमने–सामने की प्रक्रिया है।
7. शिक्षण प्रेरणात्मक प्रक्रिया हे।
8. शिक्षण एक कुशल निर्देशन है।
9. शिक्षण त्रिमुखी प्रक्रिया है।
10. शिक्षण ऑपचारिक प्रक्रिया है।

9.3 शिक्षण का उद्देश्य (Purpose of Education)

शिक्षा के उद्देश्य से हीं शिक्षण के उद्देश्यों का निर्माण होता है। जिस प्रकार शिक्षा के उद्देश्य परिवर्तनशील है वैसे हीं शिक्षण के भी उद्देश्य परिवर्तनशील है।

→ बालक को उसके जीवन से संबधित उपयोगी ज्ञान प्रदान कराना।

- → शिक्षण का उद्देश्य बालकों को सीखने के लिए प्रेरित करना क्योंकि छात्रों के प्रेरित ना होने पर शिक्षण अधिगम उपयुक्त नहीं होगा।
- → बालक की मानसिक क्षमता का विकास करना।
- → बालकों में पाई जानेवाली पाश्विक प्रवृतियों में सुधार करना तथा मानवीय गुणों का विकास करना।
- → बालकों में क्रियाशीलता का विकास करना तथा उन्हें क्रिया करने का अवसर प्रदान करना।
- → बालकों में सैवदनशीलता का विकास करना।
- → बालकों को प्राप्त सैद्धान्तिक ज्ञान को व्यवहारिक रूप में प्रयोग करने के लिए प्रेरित करना।
- → बालकों में वातावरण के प्रति समायोजन की क्षमता प्रदान करना।
- → बालकों में आत्म विश्वास तथा आत्मानुभूति करने योग्य बनाना।
- → बालकों में सृजनात्मक क्षमता का विकास करना तथा सृजनात्मक कार्य के लिए प्रेरित करना।

संक्षेप में शिक्षण के उद्देश्य :–

1. बौद्धिक शिक्षण
2. शारीरिक स्वस्थ तथा रहन–सहन
3. व्यक्तित्व का विकास एवं नेतृत्व
4. स्वावलम्बन तथा व्यावसायिक रूपता
5. मानसिक क्षमता का विकास
6. क्रियाशीलता का विकास

9.4 शिक्षा कला के रूप में (Teaching in the form of Art)

कला एक मानवीय क्रिया है, जिसे ध्यानपूर्वक विचार करके स्पष्टतः व्यक्त किया जाता है। कला किसी भी मानव को आत्म–निर्भर करने में सक्षम है। समाज की सांस्कृतिक एवं अध्यात्मिक मनोवृतियों को कला सुदृढता प्रदान करती है। यह एक नैसंगिक शक्ति का प्रतीक है कि कलाकृतियों में गहनतम भावों से चरित्र को प्रबलता करती है।

कला को शिक्षा से जोड़कर हीं उनका सर्वागीण विकास संभव है। चूकि शिक्षा और कला दोनों हीं व्यक्ति में रचनात्मक और सृजनात्मक दृष्टिकोण का विकास करते है।

शिक्षा को पाट्यपुस्तकों का मात्र संग्रह समझकर बधों निरस शिक्षा प्रदान करने से न तो बालम के मस्तिष्क पटल पर कोई प्रभाव डालेगी और नहीं शिक्षा के सार्थक उद्देश्य होगा। शिक्षण की महत्वा को तभी दूर किया जा सकता है उन्हें शिक्षण कला में विभिन्न कलाओं का समावेश कर रोचक और जीवन्त शिक्षा प्रदान की जाए। भूतकाल का अध्ययन विषय में सजीवता की अनुभूति को जागृत करने में कला विशिष्ट भूमिका निभाती है इसलिए विद्यालयी पाठ्यक्रमों में कला को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

शिक्षक विभिन्न कला–कौशल का समावेश कर बच्चों के संज्ञानात्मक विकास पर प्रभाव छोड़ सकते है, लेकिन बगैर कला से पढाए जाना विद्यालयी शिक्षा को बोझिल बनाना है।

सामान्य शिक्षा में कला के स्थान को निम्न बिन्दुवार बिन्दुओं से अंकित किया जा सकता है –

1. पाठ्य सहगामी क्रिया कलाप :– पाठ्यक्रम शिक्षण प्रक्रिया का एक आधार है जिसे शिक्षण के द्वारा छात्र उसे आत्मसात करते हैं, पाठ्यक्रम सिर्फ और सिर्फ किताबों के अध्याय हीं नहीं शामिल होते हैं बल्कि शिक्षा से संबंधित सी गतिविधि का भी समागम किया जाता है तभी छात्रों का सर्वागीण विकास संभव हो सकता है। पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ कला से परिपूर्ण होती है, जो विद्यार्थियों में आत्म विश्वास, आत्मनिर्भरता, श्रम–प्रतिष्ठा, शोषणहीन वृति, साधनशीलता, उपलब्ध साधन सामग्री का अधिकाधिक सदुपयोग, अपने हीं साधनों पर रहना, परस्पर सहायता से कार्य करना, सेवाभाव, पारस्परिक प्रेम बन्धुत्व एवं परमार्थ, लोक कल्याण आदि भावों तथा आवश्यक गुणों का विकास करते है। इसलिए विद्यालयों में कला से सम्वृक्त विभिन्न प्रकार की पाडप सहगामी क्रियाओं के आयोजन पर बल दिया जाना चाहिए। जिससे गीत, संगीत, अभिनय, चित्रकला, हस्तशिल्प आदि कार्यक्रयों में विद्यार्थियों को प्रतिभागिता का अवानर मिल सके जैसे दैनिक प्रार्थना सभा का आयोजन, सांस्कृतिक कार्यक्रय साहित्यिक कार्यक्रम, संगीत कार्यक्रम, प्रदर्शनियाँ, झाकियाँ आदि।

2. समाज पर प्रभाव :– डालने में कला की अग्रणी भूमिका होती है। विद्यालय में आयोजित किए जाने वाले विभिन्न क्रिया–कलापों में समाज की प्रतिभागिता और संसाधन प्रतिबद्धता वांछित है। इससे समुदाय और विद्यालय एक दूसरे के नजदीक आकर सामान्य शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहयोग देते हैं।

3. विभिन्न विषयों के शिक्षण प्रविधियों :– कला के महत्वपूर्ण स्थान को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। विभिन्न विषयों और उपविषयों के संचालन को रूचिपूर्ण बनाने के लिए शिक्षण विधि को कला से पृथक नहीं किया जा सकता। प्रायः देखा जाता है कि सामान्य शिक्षा के जो अध्यापक नृत्य, गीत, संगीत, कला आदि में रूचि रखते है और अपने विद्यार्थियों को प्रतिभागिता के लिए प्रोत्साहित करते हैं और प्रशिक्षित करते है; विद्यार्थी उनसे अधिक लगाव रखते है; उनको अपना आदर्श मानने लगते हैं।

4. व्यवहार शैली :– आनेवाले अनुपयुक्त परिवर्तन के कारण व्यवहारगत समस्याएँ उत्पन्न होती है ये समस्याएँ विद्यार्थी की अंतर्दशाओं के न समझने के कारण और प्रायः ध्यान में न आने वाले बाध्य एवं दूसरे दवावों या दूसरों के द्वारा नहीं समझे जाने वाली बातों से उत्पन्न होती है। नाटक एवं विडियों द्वारा आदर्श व्यवहार और बुरे व्यवहार का तुलनात्मक ज्ञान बालकों को दिया जा सकता है। सामान्य शिक्षा के साथ कला के माध्यम से नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा देकर ऐसे विद्यार्थियों और उपचार किया जा सकता है।

5. कला बालकों की आत्म :– अभिचेतना का एक विशिष्ट माध्यम है। बालक के स्वैच्छिक कल्पना जगत का विकास करने उसके परीक्षण करने की शन्ति तथा सामान्य भावनाओं एवं अनुशासनात्मक कार्य वाहियों को नियंत्रित करने के लिए कला को आदर्श माध्यम माना गया है।

6. बालकों का सृजनात्मक कार्य :– उनके आत्मिक जीवन का बुनियादी आधार है। बालक भिन्न–भिन्न चित्रों, प्रदर्शन आदि के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति कर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करते है जो सामान्य रूप से शिक्षण में यह संभव नहीं हो सकता है।

7. वर्त्तमान शिक्षा व्यवस्था :– में मूल परक शिक्षा का ह्यस दिखने लगा है जिसका अस्तर हमारे समाज पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से दिख रहा है। जिसे 2005 NCF की रूपरेखा भी ये कहती है कि कला शिक्षा पर विशेष ध्यान देते हुए इसे उसकी विषयों के कला साथ जोड़ना चाहिए।

8. कक्षा के भौतिक वातावरण :– को सुधारने में कला का स्थान दूसरा कोई नहीं ले सकता है। कला से

कक्षा के सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक वातावरण पर असर पड़ता है। कक्षा की सुनी और निरस दीवारों पर विद्यार्थियों के रोचक और आकर्षक चित्र कक्षा को सुन्दर बनाने में योगदान दे सकते है। साथ ही बालक कलाकृतियों बनाने में रूचि लेकर अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकते है।

9.5 शिक्षा में कला का स्थान (The Place of Art in Education)

जिसप्रकार शारीरिक विकास भोजन से होता है वैसे मानसिक विकास शिक्षा से होता है। नई पीढी को सृजनात्मक, कलात्मक विकास शिक्षा के माध्यम से किया जा सकता है यह शिक्षा तभी सार्थक हो सकती है जो बालकों के मस्तिष्क पटल पर सजीव चित्र अंकित कर सके। यह संभव होगा शिक्षा में कला का समावेश कर कला विहिन शिक्षा सिर्फ किताबी ज्ञान तो प्रदान कर सकती है लेकिन सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को दर किनार कर देती है। शिक्षा में कला का प्रयोग कर बालकों को क्रियात्मक अभिव्यक्ति को जागृत किया जा सकता है। समीक्षात्मक चिंतन को बढाकर अनमें अन्दर छिपी कला कौशल को उभारा जा सकता है।

1. उचित परम्पराओं का पोषण :– उचित परम्पराएँ समाज को संगठित करती है। परम्परा के कारण हीं समाज एक जूट रहता है, प्राचीन भारतीय संस्कृति, साहित्य, कला, ज्ञान, विज्ञान, की परंपराओं पर हम गर्व करते है। कला परम्पराओं का हस्तान्तरण करती है।

2. अभिचेतनाओं की स्वतंत्रता :– कला बालकों को अभिचेतना की स्वंतत्रता प्रदान करती है जिससे वह प्रेरित, उत्साहित और स्फूर्तिवान होता है। वह सामाजिक कार्यों में रूचि लेने लगता है।

3. सृजन की स्वतंत्रता :– कला की क्षेत्र में सृजन की स्वतंत्रता, उपलब्ध होती है, सृजन की स्वतंत्रता से बालक समाज की आवश्यकताओं होती है उसके भावी नागरिक समाज विरोधी कार्यों में संलग्न न हो, बल्कि सामाजिक हितों की सुरक्षा के लिए प्रेरित हो।

4. मानवीय भावों का आदान–प्रदान :– कला मानवीय भावों के आदान–प्रदान का सशक्त साधन है। मानव की उच्चतम अनुभूतियों का परिचायक है और समाज के भावात्मक उन्नयन का महत्वपूर्ण माध्यम है। अतः कला शिक्षण से बालकों को मानवीय गुणों और मूल्यों से सुशोभित किया जा सकता है।

5. राष्ट्रीयता और अन्तराष्ट्रीयता का विकास :– बालक में राष्ट्रीयता की भावना का समावेश शिक्षा के द्वारा हीं हो सकता है। कला के माध्यम से बालक को हर समाज हर देश की सभ्यता, संस्कृति, रूचि, अनुभूति, जीवन–दर्शन से परिचित कराया जा सकता है।

6. कल्पना का विकास :– कल्पना सृजनात्मकता का मूल है और सृजन कला का परिणाम है, कला बालकों की कल्पना–शक्ति का विकास कर उनमें सृजनात्मकता को बढाती है।

7. आनन्द की अनुभूति :– चित्र बनाना, नृत्य करना, गाना आदि बच्चों के आरम्भिक जीवन का अंश है। बच्चे अपने चारों ओर की दुनिया में जीते है, सृजन करते है और सौन्दर्यानुभूति का रसानुभूति में आनन्द लेते हैं।

8. भावात्मक एकता का विकास :– भावात्मक एकता वस्तुतः एक सामुदायिक भावना है। भावात्मक एकता का अर्थ है कि किसी देश के नागरिक एकत्व का बोध करे, सुख–दुख में साझीदार हो, एक साथ मिलकर कल्याण की भावना से अग्रसर हो। कला बालक के भावात्मक पक्ष का विकास करती है, बल्कि भाषा, धर्म जाति तथा भौगोलिक इकाई से उपर उठकर स्वयं को शब्द विशेष का नागरिक समझते हैं, कला विविधता में एकता के दर्शन

कराती है।

9. बौद्धिक विकास :– बुद्धि का संबंध तथ्यों विचारों और सिद्धान्तों से है, कला में किसी न किसी मात्रा में तथ्यों विचारों और सिद्धान्तों के आधार पर हीं वस्तुओं और घटनाओं का चित्रण होता है। रेखाओं और वक्र के निर्माण बालक को अपनी बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता है। बालक लक्षणों और तत्वों को समझता है इससे उसका बौद्धिक विकास होता है।

10. व्यक्तित्व का निर्माण :– कला व्यक्तित्व के निर्माण व विकास में योग देती है। कला विचार, भाव, कल्पना और शैली का प्रतिफलन होती है। बालक की कला में उसके निजी व्यक्तित्व की छाप छिपी रहती है। अपनी कला में वह जिन भावनाओं को अभिव्यक्त करता है, वे वस्तुतः उसके व्यक्तित्व और जीवन की प्रमुख भावनाएँ होती है।

एक हीं भावना को अलग–अलग बालक अलग–अलग तरह से अभिव्यक्त करते हैं जिनमें उनकी सहन प्रवृतियों, मनोवृतियों भावनाओं अनुभूतियों आदि के विभिन्न रंग देखने को मिलते है। कला बालक के बाध्य व्यक्तित्व की अपेक्षा आन्तरिक व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बालक का आन्तरिक व्यक्तित्व उसके लोक–व्यवहार की अपेक्षा उसकी कला में अधिक स्पष्टता से व्यक्त होता है।

11. नैतिकता का विकास :– नैतिकता का प्रेरणा श्रोत कला होती है। कला को नैतिकता से पृथक नहीं किया जा सकता है। नैतिकता का भावनाओं से गहरा संबंध होता है और कला का मूलाधार हीं भावना है। कला कभी समाज विरोधी रूप नहीं धारण करती यह उच्छखल प्रवृतियों पर अंकुश लगाती है।

12. आध्यात्मिक गुणों का विकास :– संगीत अराधना है, इससे बालक को तनम्यता की अवस्था उपलब्ध होती है उसके ह्मदय के निश्चल उदगारों के श्रोत उमड़ते हैं वह गलत कार्यों के से वचनों की प्रेरणा लेता है।

9.6 शिक्षण एक कला और विज्ञान (Teaching as an Art & Science)

शिक्षण एक सतत् सामाजिक प्रक्रिया है, प्रत्येक देश में शिक्षा पर वहाँ की संस्कृति और दर्शन का प्रभाव पड़ता है अर्थात् जिस देश की संस्कृति और दर्शन उन्नत होगी वहाँ का शिक्षण प्रक्रिया भी उन्नत होगा। इस प्रक्रिया के वैज्ञानिक और कलात्मक दोनों पक्ष है। शिक्षण में जब हम उसकी समस्त प्रक्रियाओं का आधार मनोविज्ञान है। शिक्षण विज्ञान हो जाता है।

जब शिक्षण को मार्गदर्शन करने वाला छात्रों को उत्सुक एवं जागृत बनाने वाला कहते है तब यह कलात्मक रूप लेने लगता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि शिक्षण की प्रकृति कलात्मक और वैज्ञानिक दोनों तरह की होती है। इन दोनों प्रकृति का उद्देश्य छात्रों के व्यवहारों में वांछित परिवर्तन लाने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ सम्पादित करना होता है और इन क्रियाओं के फलस्वरूप शिक्षण और सीखने वाली परिस्थिति में संबंध स्थापित हो जाता है।

9.7 सारांश (Summary)

उपरोक्त पाठ में हम यह जान सकेगें कि शिक्षण एक कला के रूप में किस प्रकार बालकों के लिए आवश्यक है। शिक्षा मानव मस्तिष्क को स्वस्थ्य और उन्नत बनाती है। उसमें शिक्षण एक प्रक्रिया है जिसे शिक्षक

अपनी कौशल और क्षमता से इस कार्य को सफलतापूर्वक करते है, लेकिन सिर्फ शिक्षण को किताबी ज्ञान से प्रदान किया जाए तो छात्रों के लिए निरस और उबाऊ हो जाएगा। इस लिए शिक्षण प्रक्रिया एक शिक्षक के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है कि वे प्रभावी शिक्षण कला का प्रयोग कर बालकों के सृजनात्मक क्षमता और चिंतन को बढा सके। यह तभी हो सकेगा शिक्षक अपनी शिक्षण कला में कला को समाहित करे। जैसे–पाठ का उपयुक्त चित्रों कहानियों, कविताओं, नाटक आदि के माध्यम से जीवन्त कर प्रदान किया जाए जिससे छात्रों का बहुआयामी विकास हो सके। व्यक्तिगत भिन्नता को देखा जाए तो हर छात्रों की अपनी क्षमता और रूचि होती है हर छात्र किसी पाठ को आसानी से समझ सकेंगे। इसके लिए शिक्षण कला पद्धति पर एक शिक्षक को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

9.8 अभ्यास के प्रश्न(Questions for Exercise)

1. शिक्षण क्या है? इसके उद्देश्य को बताए।
   What is teaching? Discuss its objectives.

2. शिक्षण कला से प्रभावी शिक्षा प्रदान की जा सकती है कैसे?
   How does teaching as an art?

3. शिक्षण एक कला है। इसका प्रभाव छात्रों पर किस प्रकार पड़ता है?
   'Teaching is an art', How does its influence the students?

9.9 प्रस्तावित पाठ(Suggested Readings)

1. राखी पब्लिकेशन : शिक्षा में नाटक, कला एवं सौन्दर्यशास्त्र, आन्शवना सक्सैना, सुशील सरिल।

2. अग्रवाल पब्लिकेशन, कला और शिक्षा, सत्यम त्रिपाठी।

❒ ❒ ❒

इकाई : 10 नाटक एक शिक्षण के रूप में
Unit : 10 Drama as a Form of Teaching

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

10.0 उद्देश्य (Objective)
10.1 प्रस्तावना (Introduction)
10.2 नाटक का अर्थ (Meaning of Drama)
10.3 नाटक की अवधारणा (The Concept of Drama)
10.4 शिक्षण में नाटक की भूमिका (Role of Drama in Teaching)
10.5 बालकों पर नाटक का शैक्षिक प्रभाव (Educational Effect of Drama on Children)
10.6 सारांश (Summary)
10.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)
10.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

10.0 उद्देश्य (Objective)

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- नाटक कला से अवगत हो सकेंगे।
- नाटक की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- नाटक एक शिक्षा के रूप में है से अवगत हो सकेंगे।
- नाटक के शैक्षिक प्रभाव क्या है? जान सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है ।

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

नाटक एक प्रदर्शनकारी कला है जिसमें नाटक के किसी यर्थाथघटना का अनुकरण कर कलाकार अपनी भाव भैगिमा के द्वारा मंच पर प्रस्तुत करता है। वर्त्तमान परिवेश में नाटक के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जा रही

जिससे बालक रोचक तरीके से ग्रहण करते हैं। यह शिक्षण की एक पद्धति है। नाटक का शैक्षिक प्रभाव भी पड़ता है, जिससे बालक यथार्थ घटनाओं से रूबरू होते है। इसप्रकार नाटक समाज का दर्पण है। समाज में जटिल घटनाओं को आम लोगों तक पहुँचाया जाता है जिसका लोगों पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

इस इकाई में नाटक के अर्थ एवं अवधारणा की चर्चा की गई है। बालकों पर नाटक के शैक्षिक प्रभाव की चर्चा भी विस्तारपूर्वक की गई है।

10.2 नाटक का अर्थ (Meaning of Drama)

नाटक एक स्वतंत्र साहित्य विद्या है और इसका प्रस्तुती करण एक उत्कृष्ट कला है। नाटक का प्रभाव इसकी प्रस्तुतीकरण और प्रदर्शन पर निर्भर करता है नाटक एक प्रदर्शनकारी कला है, जिसे मंच पर किसी घटना का वास्तविक रूप को अनुकरण करके दिखलाया जाता है।

मनुष्य प्रारम्भ से हीं प्रकृति का अनुकरण करता रहा है। जैसे–जैसे चेतना विकसित हुई, अनुकरण की क्रिया के फलस्वरूप उसके दिमाग में कई प्रकार की घटनाओं का समावेश होता है। इस लिए नाटक को विभिन्न घटना का अनुवृति कहा जा सकता है।

विभिन्न आयामों के द्वारा नाटक का मंचन किया जाता है, जिससे मुखाभिव्यक्ति, अभिनय, वेशभूषा आदि के उपयुक्त संयोजन द्वारा नाटक को यथार्थ रूप में मंच पर होते हुए दिखलाया जाता है, जिससे लोग मानस पटल पर उस घटना को काल्पनिक रूप से हीं विषयवस्तु से वाकिफ हो जाते है।

10.3 नाटक की अवधारणा (Concept of Drama)

भारत में "भरतमुनि" का नाट्यशास्त्र लगभग 3000 वर्ष पुरानी सबसे प्रमाणिक पुस्तक मानी जाती है। "ड्रामा" अंग्रेजी का शब्द है, जिसे ग्रीक भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ एकशन या कार्यवाही अर्थात् नाटक थियेटर में अर्थात् प्रेक्षाग्रह में स्टेज पर कलाकारों द्वारा दर्शकों के सामने पूर्व निर्धारित कथा के भावों को अपने रूबरू तथा एक्टिंग (अभिनय) द्वारा व्यक्त करना है। इसे सामूहिक रूप में देखा जाता है। नाटक चाहे स्तर पर हो या विश्वविद्यालय या समाज में सार्वजनिक मंच से हो यह विद्यार्थी के मानसिक विकास में अहम भूमिका अदा करता है। इसलिए उसका मानसिक स्तरविकसित होता है। संकीर्ण मानसिकता में भी व्यापक प्रभाव डालता है। जिससे व्यक्ति के विचार और कल्पना में भी व्यापक परिवर्तन लाता है। नाटक के द्वारा समाज के कई ज्वलन्तशील मुद्दों को दिखलाया जाता है जिससे बालक उससे प्रभावित होते है।

"कैथलीन गैलेधर" (Kathleen Gallagher) का कथन है कि नाटक के द्वारा शिक्षा देने का कोई शैक्षिक मॉडल तो उपलब्ध नहीं है, किन्तु नाटक द्वारा शिक्षा (Theatre Redagogy) में एक ओर तो अनुभवों का अर्थ स्पष्ट होता है तो दूसरी ओर अभिनेता के रूप में हम अपनी व्यक्तिगत सोच को संसार के सम्मुख रख पाते हैं संसार में अपने को किस प्रकार व्यक्त किया जाए और पारस्परिक सम्बन्धों का स्वरूप हो इसे आसानी से जान सके।

नाट्य कला में कई नाट्यशास्त्री ने इसी रचना कर अपने अन्तः निहित कला का परिचय दिया। 1958 में यूनेस्कों के सहयोग से भारतीय नाट्य संध ने हीं एशियन थियेटर इन्स्टीट्यूट की स्थापना की। हिन्दी नाटकों के लेखन के इतिहास पर अगर नजर डालते हैं तो यह जान पाते हैं कि नाटकों के लेखन का इतिहास भारतेन्दु

हरिशचन्द्र के पिता श्री गोपाल चन्द्र द्वारा सन 1859 में लिखित नाट्य नाटक से हैं। प्रथम मंचित नाटक का श्रेय शीतलप्रसाद त्रिवेदी के जानकी मंगल को जाता है। जो बनारस थियेटर (पुराना) में सन् 1868 में मंचित किया गया और जिसमें भारतेन्दु नें स्वं पहलीवार एक कलाकार के रूप में अभिनय किया। बाद में अपने देहावसान तक भारतेन्दु ने 18 नाटक लिखें।

भारतेन्दु हरिशचन्द्र नें जिस प्रकार 1875 में सत्य हरिश्चन्द्र, 1876 में भारत दुर्दशा एवं सन् 1878 में अंधेरी नगरी आदि नाटकों से नाटको के आधुनिक संसार की नींव डाली उसी प्रकार भारतेन्दु के बाद जय शंकर प्रसाद ने सन् 1926 में स्कन्दगुप्त, मैथिली शरण गुप्त ने सन् 1916 में तिलोतमा सन् 1921 में चन्द्रहास और सन् 1925 में अनंग की रचना कर इस नाट्य संसार को पूर्ण स्वरूप प्रदान किया।

आगे हम जानेंगे कि अभिनय के कौन–कौन अंग है –

10.3.1 अभिनय के अंग

नाट्यविद्यान के मुख्यतः पाँच अंग है –

1. मुख मुद्रा
2. शरीर भंगिमा
3. गति
4. वेग
5. वाणी

1. मुखमुद्रा :– हमारी सम्पूर्ण भावभिव्यक्ति का प्रमुख साधन हमारी मुख मुद्रा या भाव–भंगिमा है। हम अपनी बातों के संप्रेषण में शब्द के साथ–साथ अपने भावाभिव्यक्ति में अपनी मुख–मुद्रा जैसे भौहों फैलाकर क्रोध दिखाना गाल फुलना, दाँत मीचना आदि हरकतें कर हम अपने यर्थाथ रूप में पहुँचाते हैं। पाश्चात्य नाट्य शास्त्रियों का कथन है कि अपने माथों की नसों व मुख के स्नायुओं का एक ऐसा रूप इन्हें इस तरह साधना चाहिए कि केवल मुख के किनारों से हीं सब प्रदर्शन किया जा सके। इसप्रकार अभिनय की सिद्धि के लिए अपने सामने दर्पण रखकर अभ्यास करने से बड़ी सफतला मिलती है और मुख मुद्रा सध जाती है।

2. शरीर भंगिमा :– जिस प्रकार मुख मुद्रा द्वारा अपना भावों को अभिव्यक्ति किया जा सकता है। वैसे हीं शरीर भंगिमा जैसे कंधे उचकाकर, हाथ उठाकर या गिराकर, मुद्रीतानकर या खोलकर, हाथ फैलाकर या बाँधकर, आगे, झुककर घुटने टेककर या अनेक प्रकार से शरीर के अंगों का संचालन करके अनेक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक और मानसिक परिस्थितियों में तथा भावों के प्रदर्शन में शारीरिक अंगों से विभिन्न प्रकार के भाव प्रदर्शित किए जा सकते हैं इसे हीं शारीरिक भंगिमा द्वारा कहा जाता है।

3. गति या (Tempo) :– नाटक के एक आयाम का भाग यह भी है कि बिना गतिका प्रयोग का हम किसी कार्य को नहीं कर सकते है। गति में तेज चलना पाँव दबा कर चलना परिक्रमा करना, मंच पर आना और जाना आदि।

4. वाणी (Speech) :– यूरोपीय नाट्यशास्त्रियों का मत है कि अभिनेता को अपनी वाणी पर पूरा अधिकतर अधिकार होना चाहिए। वाणी में अभिनय के अनुसार वाणी में उतार–चढाव लाना जरूरी है जैसे किसी से प्रार्थना करना, क्रोध करना, संवेदना प्रकट करना, हर परिस्थिति में अभिनय में भावों के अनुसार वाणी में उतार–चढाव

आवश्यक है।

5. वेग (Speed) :– अभिनय के लिए वेग का भी बड़ा महत्व है। समाधि और शोक की अवस्था में स्थिर वृद्धावस्था और कलान्ति की अवस्था में मंद, साधारण सभी अवस्थाओं में स्वाभाविक गति होनी चाहिए। यह वेग मुख मुद्रा, शरीरिक भंगिमा, गति, वाणी के समस्त रूपा में व्यापक होता है।

अभिनय के विभिन्न आयाम

अभिनय की विभिन्न शैलियाँ मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित हैं –

(1) यथार्थवादी

(2) गैर यथार्थवादी

इन शैलियों के अनुकूल अभिनेता मंच पर वास आलेख को दर्शकों के लिए जीवित करता है। इस प्रक्रिया में वह एवं एक उपकरण था। उस उपकरण को संचालित करने वाले का स्थान ग्रहण कर लेता है जिससे वह अनेक संयोजन एवं संगीतय या गतिमय आकार उत्पन्न करता है या सृजित करता है जिसमें उनका शरीर, आवाज, मस्तिष्क एवं कल्पना का समिन्वत उपयोग होता है।

(1) यथार्थवादी (Realistic Drama) :– नाटक कला के माध्यम से एक कलाकार को मंच पर वास्तविकता का छायाचित्र प्रस्तुत करना होता है। इसका उदाहरण स्वरूप देखते हैं शेक्सपीयर (Shakespeare) के नाटक Julis Caesar, Hamlet, Othello तथा मोटरलिंक केप्रतीकवाद नाटक द ब्लू वर्ड की प्रस्तुति में यथार्थवादी अभिनय पद्धति का प्रयोग किया तथा पाश्चात्य रंगमंच को एक नई दिशा दी।

स्टेस्विावस्की ने इन नाटकों के अभिनय में समूह रचना और रीतिबद्ध अभिनय को प्रश्रय दिया और निर्देशन को सृजनात्मक भावना एवं कला तत्व से संबंधित किया। अभिनय में सहजता रंगों में स्वाभाविकता और ध्वनि संकतों में यथार्थता इस अभिनय पद्धति की विशेषता थी। सहजता और यथार्थबाद की मुखरक्वाने के लिए चरित्र की आन्तरिक भावना को समझने तथा उसकी व्याख्या करने की चेष्ठा की।

(2) गैर यथार्थवादी (Non-realistic Drama) :– नाटक में एक और जहाँ यथार्थता को दिखलाया जाता है ताकि जनमानस में उत्तेजना पैदा कर अमुक नाटक से सम्बधित सक्रियता लोगों में आए वही दूसरी तरफ गैर यथार्थवादी नाटकों में कलाकार येन केन प्रकारेन अपनी कला की क्षमता की गैर यथार्थवादी घटनाओं को भी अभिनय नृत्य और आकर्षण के द्वारा लोगों को दिखलाकर उत्तेजना पैदा किया जाए, जैसे काल्पनिक कष्टनिया दिखाकर देवलोक की घटनाओं को दिखाना सत्य की असत्य पर विजय दिखाना, खलनायक की कहानी दिखाना अर्थात् लोगों को बहुत सारी बाते जो अकाल्पनिक है और सत्य से परे हैं उन्हें भी नाटक के माध्यम से दिखलाया जाता है उसके लिए वेशभूषा, नृत्य, संवाद का सहारा किया जाता है।

नाटक कला से भली भाँति समझा जा सकता है कि अभिनय संवाद, भाव, भेषभूषा, नृत्य आदि के संयोजन से यथार्थ घटनाओं का चित्रण दर्शकों पर किया जाता है जिसका शैक्षिक प्रभाव पड़ता है।

10.4 शिक्षण में नाटक की भूमिका (Role of Drama in Teaching)

नाटक एक कला है साथ–साथ यह शिक्षा का एक शिक्षण विधि भी है, जिनके द्वारा बालकों को कक्षा–कक्षा में भी शिक्षा दी जाती है। "लियान होरे (Lynn Hoare) का कथन है कि शिक्षा के क्षेत्र में नाटक अत्यन्त उपयोगी

है। नाटकीय तत्व, जिसके साथ परस्पर संवाद शामिल हों और जिसने दर्शकों की भी भागीदारी हो। कलाकार अपने सामूहिक कार्य के द्वारा अर्थात् अपने अभिनय में कहानी के अलग–अलग पात्रों के समन्वय से एक यथार्थ चित्र को प्रस्तुत किया जाता है जिसका दर्शकों के मानस पटल पर एक प्रभाव छोड़ती है। साथ हीं नाटक के विभिन्न अंग जैसे अपने अभिनय संवाद, भेष–भूषा, मुख भंगिमा, शरीरिक भंगिमा, और गति के साथ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। "हेलन निकोलसन (Helen Nicholson) का कथन है कि इस महत्वपूर्ण कार्य में व्यावसायिक नाट्य कर्मी एवं नाट्य निर्माता युवा लोगों के साथ काम करते है। ऐसे में संसार में हर प्रकार की घटना से जुड़ी कहानियों का नाट्य मंचन कर अनेक प्रकार के बारे में ज्ञान प्रदान करते है।

नाट्यकला निरपेक्ष रूप से अपने आप में कुछ नहीं है, लेकिन अन्य समस्त प्रदर्शनकारी कलाओं जैसे नृत्य, गायन, संगीत, चित्रकला इत्यादि। किसी विशेष संतुलन पर विशेष समय में जब एक साथ मिश्रित होती है, तो नाट्य कला का एक साथ मिश्रित होती है तो नाट्यकला का रूप धारण करती है। यह नाट्यकला जब शिक्षा पद्धति के साथ एकाकार होती है तो शिक्षक और छात्र पढने और पढाने की ऊँची पायदान ग्रहण करते हैं। नाट्यकला एक आत्मिक और प्रगति शील कला है जो मनुष्य को मानसिक, शारीरिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक स्तर पर समृद्ध करती है। इसके माध्यम से छात्रों में किसी जटिल से जटिल विषय को आत्मसात करने की प्रक्रिया को सहज, सुगम और स्पष्ट बनाया जा सकता है। भरतमुनि से लेकर समस्त प्रदर्शनकलाएँ अंर्तनिहित है अतः शिक्षकों और छात्रों को रंग मंच की सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक प्रक्रिया से गुजार कर उसके शैक्षणिक और सांस्कृतिक अनुभव को समृद्ध किया जा सकता है। ऐसा देखा जाए तो मानवीकरण की समस्या नैतिक सौन्दर्यात्मक और धार्मिक तीनों प्रकार के मूल्यों की दृष्टि से हमेशा हीं मनुष्य की केन्द्रीय समस्या रही है, लेकिन अब इसका चरित्र एक विशुद्ध मशीनीकरण का हो चुका है।

जैसे–जैसे मशीनीकरण से हमारा समाज ओत–प्रोत हुआ है, वैसे–वैसे अमानवीयता भी बढी है, इसके प्रभाव से छात्र और शिक्षक भी बच नहीं पा रहे है। आज जबकि समाज में जहाँ छात्र रहते है, चारों तरफ अराजकता, अनिश्चितता और हिंसा का माहौल है इसके प्रभाव से छात्रों का सांस्कृतिक और दार्शनिक मेरूदंण्ड दूर रहा है। सिनेमा, टीवी जैसे मास–मीडिया के साधन भी उन्हें मूल्यहीन बन रहे है जबकि इसके समानान्तर रंगमंच और प्रदर्शन कलाओं की आत्मा में मानव मूल्य आधारित गतिविधियों और विचार बसे हुए (अन्तनिहित रूप से) है। शुभ और अशुभ को पहचान करने की दृष्टि थे कलाएँ देती है। इसलिए भरत मूनि ने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि "भवताम, देवतानाम च शुभा शुभ विकल्प, कर्म भावां क्यापेद्दीं नाट्य वेदो मया कृत" अतः रंगमंच छात्रों को दार्शनिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर जीवन का मूल्य और दृष्टिकोण की शिक्षा देता है।

आज शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य पैसा कमाना हो गया है जिससे वह समाजिक और सांस्कृतिक सरोकारों से विमुख हो रही है, लेकिन रंगमंच आज भी व्यापक स्तर पर सामाजिक और दार्शनिक सरोकार से लवरेज है, नाट्य कला अपने ह्रदय में भरतमूनि, भाष्य, कालिदास, शेक्सपियर, भारतेन्दु, जयशंकर प्रसाद, ब्रेरहत, प्रेमचन्द, मोरन राकेश, र्धमवीर भारती, सुरेन्द्रवर्मा इत्यादि के नाट्यकला संबंधित मानवीय मूल्यों को संजो कर रखा है, जिससे छात्रों के अतंर्मन में नाट्यशैली के माध्यम से पिरोना आज आसान और आवश्यक है। विवेकानन्द ने कहा है कि शिक्षा के ज्ञान वर्धन क्षेत्र में छात्रों के सामने सामाजिक उद्देश्य न हो एवं उसे प्राप्त करने के लिए सही प्रेरणा का माध्यम न हो तो ऐसी शिक्षा अपनी व्यक्तिगत लालसा पूर्तिमात्र बन कर रह जाएगी।

विवेकानन्द के इस वकतव्य को देखे तो छात्रों के आंतरिक गुणवत्ता के तीन पक्ष होते है, एक मानवीय और दूसरा तकनीकी और तीसरा जिज्ञासा, भारतीय स्वतंत्रता का दौर शायद एक मात्र ऐसा समय था जब शिक्षा को सामाजिक और मानवीय जागरण का जरिया समझा जाता था, लेकिन आज स्थितियाँ बदल गई है। बड़ी विडंबना यह है कि तकनीकी शिक्षा अलौपार्ज़न और व्यक्तिगत लालसा पूर्ण का मुख्य जरिया बन गया है। जिससे मनुष्य मशीन मात्र बनकर रह जाता है उससे उसका मानवीय और सांस्कृतिक पक्ष धूर जाता है। ऐसी स्थिति में नाट्य कला हीं एक मात्र ऐसी कला है जिसे शिक्षा पद्धति के एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में लागू किया जा सकता है। संचार के समस्त माध्यम में आज मूल्यों का क्षरण हुआ है, लेकिन नाट्यकला आज भी अपनी आत्मा के स्तर पर मूल्यों से लवरेज है। यह कला सैद्धान्तिक और व्यावहारिक उपकरण के द्वारा बदल गई है। अतः छात्रों के दिलों दिमाग में सच्चे अर्थों में दार्शनिक और सांस्कृतिक मूल्यों के निर्माण और विकास के लिए रंगमंच मूल्यों को संस्कारित करना अति आवश्यक है जिससे उनका शैक्षणिक अनुभव परिमार्जित और समृद्ध होगा।

रंगमंच के बहुत सारे व्यवहारिक और तकनीकी क्रियाकलाप है, जिनके माध्यम से छात्रों के व्यक्तित्व को समग्र रूप से विकसित किया जा सकता है। मसलन नाट्कीय खेल, दैहिक अभ्यास, वाचिक अभ्यास, अभिनय, कहानी निर्माण, साज–सज्जा, सुरताल और संगीत। कंठस्थ करने का कौशल निर्माण, एकाग्रता लाने के अभ्यास प्रकाश व्यवस्था, मुखौटा निर्माण, आत्म–विश्वास का जगाने की शिक्षा तार्किकता के खेल, किसी भी जटिल पथ को नाट्य प्रदर्शन द्वारा आसान बनाना, नृत्य की विभिन्न भाव भंगिमा द्वारा, याददाश्त को वृहद और तीव्र करने की नाट्य कार्यशाला, किसी भी निबंध, उपन्यास, कविता या कहानी का नाट्य रूपांतर और प्रस्तुति और मस्तिष्क का विकास सृजनात्मक आदि। ये कुछ ऐसी नाट्य कला की गतिविधियाँ है, जिनको व्यावहारिक रूप से लागू करने से छात्रों और शिक्षकों दोनों का विकास संभव होता है उसका विस्तृत वर्णन आगे आप पढ़ सकेंगे।

नाटकीय खेल एक ऐसी मनोरंजनात्मक प्रक्रिया है, जिसे खेलते हुए छात्रों में सीखने की सहज वृत्ति का निर्माण होता है। यह सतही स्पर पर महज कुछ खेल ही लगता है लेकिन मन और मस्तिष्क की गहराईयों में इसका बहुत हीं सक्ष्म प्रभावपड़ता है। दैहिक अभ्यास नाट्यकला की बहुत हीं महत्वपूर्ण गतिविधि है। किसी भी भाव को अभिव्यक्ति करने हेतु देह शरीर भंगिमा बहुत महत्वपूर्ण है। किताबों में रचित गूढ़ और गंभीर बातों को समझने और समझाने के लिए दैहिक भाषा का उपयोग आवश्यक होता है जिसे समृद्ध करने के लिए कुछ दैहिक अभ्यास करना पड़ता है। प्रख्यात नाट्य निदेशक "मेयर होल्ड" ने इस संदर्भ में एक थियेटर बायों मैकेनिक्स सिद्धान्त खड़ा किया है जो शिक्षा में दैहिक भाषा परंपरा हमारे वेदकाल से हीं मौजूद रही है। किसी भी शब्द और वाक्य को स्पष्ट और अर्थपूर्ण बनाने के लिए वाचिक अभ्यास अत्यन्त हीं आवश्यक है। आज वैश्विक स्तर पर उच्च शैक्षणिक संस्थान जिस प्रकार से पिछड़ते जा रहे हैं। स्नातक और परास्नातक छात्रों में कौशल का आभाव दिख रहा है। सांस्कृतिक और दार्शनिक रूप से एक वंचन की स्थिति बन गई है। ऐसी स्थिति में नाट्यकला के प्रयोग से हम इस गिरावट को रोक सकते है। इस स्थिति को दूर करने के लिए नाट्यकला हमारी इस वंचन से दूर कर सकती है। आज प्रत्येक शहरों और कस्बों में रंगमंच जिंदा है लेकिन औपचारिक रूप से कुछ हीं लोग इसकी शिक्षा दीक्षा लेते है। आज नाट्यकला को प्राथमिक शिक्षक अपने शिक्षण प्रविधि में अपनाकर छात्रों में मानसिक, सामाजिक शारीरिक रूप से सकरात्मक प्रगति करने सफल हो सकेंगे।

10.5 बालकों पर नाटक का शैक्षिक प्रभाव (Educational Effect of Drama on Children)

आइए हम आगे पढेंगे नाटक का शैक्षिक प्रभाव क्या पड़ता है। नाटक का शैक्षिक प्रभाव कई प्रकार से पड़ते है जैसे :–

1. सामाजिक प्रभाव :– नाटक समाज का दर्पण होता है। समाज में घर रहीं घटनाओं को हम नाटक के माध्यम से देखते हैं जिसका प्रभाव बालकों पर अधिक पड़ता है। सकरात्मक और स्वस्थ चरित्रवाले नाटकों का प्रभाव बालक के व्यक्तित्व पर पड़ता है समाज की ज्वलन्त समस्याओं को अपना हिस्सा मानते है और सामाजिक रूप से उन सरोकारों से बालक जुड़ते है और उन समस्याओं को जानकर एक सामाजिक परिवर्तन लाने में सफलता मिलती है बहुत सारे सामाजिक समस्याएँ जैसे – नशा सेवन, बाल विवाह, नारी शिक्षा, जैसे नाटकों का प्रभाव बालकों में एक संवेदना पैदा करती है।

2. नैतिक मूल्यों का प्रभाव :– बालक मंच पर नाटकों को देखकर मर्यादित आंचरण करना सीखते है आदर्श चरित्र को अपनाते है और नैतिक मूल्यों और सामाजिक आदर्श को देखकर उनसे सीखते है कि व्यक्ति का सामाजिक सद्भावना, सौहार्द्र पूर्ण तरीके से जीना चाहिए, समाजिक नियमों का पालन करना चाहिए और हम अपनी संस्कृति को आनेवाली पीढी तक हस्तान्तरित करते है।

लोक नाटकों का प्रभाव रामलीला के माध्यम से नैतिक आदर्श मूल्यों को बच्चों पर असर पड़ता है। जो आज वर्तमान परिवेश में समाप्त होता दिख रहा है।

3. चारित्रक मूल्यों का निर्माण :– नाटक कला का व्यक्ति के चरित्र पर भी प्रभाव पड़ता है अपने जीवन मूल्यों को वे समझ कर एक उज्जवल चरित्र का निर्माण करते है।

10.5.1 नाटक कला से संबंधित समस्याएँ एवं सुरक्षा :–

अभिनय एक कला है जो सदैव सम्मानित होनी चाहिए। किन्तु हमारे भारतीय वातावरण में स्वातंत्रोपरान्त भी अभिनय, अभिनेत्रियों को, निर्देशकों को समाज में मान्य स्थान प्राप्त नहीं है। आज भी यहाँ अधिकांश दर्शक वर्ग ऐसा है जो नाटक को सिर्फ मनोरंजन का साधन मानते है। आज भी हमारे विचार दृष्टि रंगमंच के प्रति उपयुक्त नहीं है। आज वैश्वीकरण के इस युग में नाटक कला ओर मंचकला को ग्लैमरस की दुनिया के सामने कमतर आँकने लगे है। यह अलगाव नाट्य के क्षेत्र के लिए दयनीय है। जबकि नाट्यशास्त्र में वर्णित नाट्य अनंतगरिमा लिए हुए है। रंगमंच युग और काल को मानव प्रकृति को सामाजिक स्वरूपों को अन्य प्रभावों को प्रस्तुत करने का सबल माध्यम है। शेक्सपियर के हेमलेट ने रंगमंच को ऐसा दर्पण कहा है जो समस्त प्रकृति की सफल अनुकृति करता है। इसलिए नाटक को वर्तमान परिवेश में अहमियत देकर बालकों के कल्पनाशीलता और चिन्तन को बढाने में अहम भूमिका निभा सके।

10.6 सारांश (Summary)

नाटक कला एक ऐसी लेखकीय प्रस्तुति है जिसे अधिक्तर संवादों के रूप में हीं प्रस्तुत करना पड़ता है

जिसे यर्थाथ प्रस्तुतिकरण के द्वारा दर्शकों तक पहुँचाया जाता है। नाटक के आवश्यक अंग में भाव–भंगिमा शरीर भंगिमा, गति, वेग और संवाद महत्वपूर्ण है जिसे यर्थाथवादी, गैर यर्थाथवादी को नाटक के माध्यम से दिखाया जाता है।

नाटक का शैक्षिक प्रभाव बालकों पर पड़ता है। बालक नाटकों के माध्यम से बहुत सारी गंभीर और संवेदनशील घटनाओं को जान पाते है। नाटक के द्वारा बालक रोचक तरीके से उन पाठों को जान पाते है जिसे अपने जीवन में उतारने का प्रयास करते है।

बालक को नाटक विधि के द्वारा किसी भी पाठ को आसानी से सीखाया जा सकता है। नाटकों के द्वारा हीं बहुत सारी बातों और घटनाओं से अवगत हो पाते हैं जिसे अन्य माध्यम से नहीं जान पाते है।

नाटक कला का समाजिक, वैतिक, चारित्रिक प्रभाव बालकों पर पड़ता है बालक मंच पर चित्रित घटनाओं को देखकर अपने जीवन में उतारने का प्रयास करते हैं संवेदनशील मुद्दों पर वे अपनी मानसिकता में बदलाव भी लाते हैं बहुत सारी सामाजिक बुराईयों को समाज के सामने में लाने में नाटक कला का सहयोग लिया गया जिसका शैक्षिक प्रभाव बालकों पर पड़ता है।

10.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. नाटक कला क्या है? इसके विभिन्न तत्वों का वर्णन करें।
   What is Drama Art? Discuss its various elements.

2. नाटक कला का शिक्षण पर क्या प्रभाव पड़ता है? विस्तार से बताएँ।
   How does the drama-art influnce the teaching? Discuss it in details.

3. वर्तमान में नाटक कला से सम्बधित क्या समस्याएँ है? समाधान हेतु सुझाव दें?
   What are the problems associated with drama-art? Give opinion about its solution.

10.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. वाणी प्रकाशन, हिन्दी नाटकः रंग, शिल्प दर्शन, डॉ0 विकल गौतम।

2. प्रकाशन विभाग : भारतीय कला और कलाकार, डॉ0 कुमारिल स्वामी।

❒ ❒ ❒

इकाई : 11 कलाओं के विभिन्न रूपों का आकलन
Unit : 11 Assessing the Different Form of Arts

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

11.0 उद्देश्य (Objective)

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

11.2 कला शिक्षा के उद्देश्य (Objective of Art Education)

11.3 कला शिक्षा के परिपेक्ष्य में आकलन और मूल्यांकन का अर्थ (Meaning of Assessment and Evaluation in the Context of Art Education)

11.4 विभिन्न प्रकार के कला का आकलन (Assessment of Different Form of Art)

11.5 दृश्य कला में मूल्यांकन (Evaluation in Visual Art)

11.6 मंचन कला में मूल्यांकन (Evaluation in Performing Art)

11.7 सारांश (Summary)

11.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

11.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

11.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- ❖ कला शिक्षण के उद्देश्य को जान सकेंगे,
- ❖ आकलन और मूल्यांकन का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे,
- ❖ कला के विभिन्न रूपों से परिचित हो सकेंगे,
- ❖ कला के आकलन एवं मूल्यांकन के लिए विभिन्न मानदंडो का निर्धारण कर सकेंगे,
- ❖ आकलन एवं मूल्यांकन के लिए सतत् एवं समग्र प्रक्रिया का उपयोग करते हुए, ग्रेडीग कर सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

11.1प्रस्तावना (Introduction)

हाल के दिनों में उच्च प्राथमिक स्तर पर कला एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। कला एक क्रिया प्रधान शिक्षा है एवं कला शिक्षा में विभिन्न प्रकार के कलाओं का ज्ञान प्राप्त होता है। कला सीखने की प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के कौशल ज्ञान का उत्तरोतर विकास होता है। इस कौशल एवं ज्ञान के विकास का आकलन एवं मूल्यांकन का आधार क्या हो? एवं कैसे किया जाय? एवं इस कार्य के लिए कौन सी रणनीति अपनाई जाय? इस सब पर चर्चा एवं परिचय कराना इस इकाई का उद्देश्य है। इन सब के साथ कला के उद्देश्यों से भी छात्र परिचित हो सकेंगे। इस संबंध में यह जानकारी देना आवश्यक है कि आकलन/मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य छात्रों के आत्म मूल्यांकन कौशल को विकसित करना है जो जीवन पर्यन्त सीखने एवं आत्म विकास के लिए आवश्यक है।

11.2 कला शिक्षा के उद्देश्य (Objective of Art Education)

कला हमारी संस्कृति के संरक्षण और संबर्धन का महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर कला का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। कला शिक्षण के उद्देश्य का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

- विद्यार्थी अपनी भावनाओं, विचारों और अनुभवों को चित्र, संगीत, शारीरिक हाव–भाव एवं गतिविधियों द्वारा व्यक्त करे।
- बालको को इस योग्य बनाना कि कला के विभिन्न माध्यमों से मानसिक स्वास्थ्य की चुनौतियों का सामना करना।
- बालक की आवश्यकता और अभिव्यक्ति के मध्य संतुलन स्थापित करना।
- कला के प्रति बालकों को संवेदनशील बनाना।
- सौन्दर्यानुभूति का विकास करना।
- पर्यावरण में व्याप्त सौन्दर्य एवं तथ्यों के प्रति जागरूक और संवेदनशील बनाना।
- कल्पनाशील चिन्तन का विकास करना एवं समस्याओं का रचनात्मक तरीके से समाधान निकालने की योग्यता का विकास करना।
- आत्म अभिव्यक्ति के महत्व का ज्ञान एवं आत्म विश्वास का विकास करना।
- स्थानीय एवं क्षेत्रीय कला के ऐतिहासिक एवं वर्त्तमान स्थिति का ज्ञान।
- आनन्द अनुभूति के लिए विद्यार्थियों में समझ विकसित करना।

उपरोक्त उद्देश्यों को विश्लेषणात्मक आधार पर वर्गीकृत करने पर निम्न पाँच वर्ग सतह पर आते हैं –

1. ज्ञानात्मक उद्देश्य
2. कौशलात्मक उद्देश्य
3. रसात्मक एवं समीक्षात्मक उद्देश्य
4. सृजनात्मक उद्देश्य एवं
5. अमिवृत्यात्मक उद्देश्य

1. ज्ञानात्मक उद्देश्य :– इस उद्देश्य के अंतर्गत विभिन्न कलाओं की विद्या और सामग्री का ज्ञान, चित्रकला, संगीत और अभिनय कला का ज्ञान कला के माध्यम से सांस्कृति, पौराणिक, व्यवहारिक, जीवन गत अनुभव, गाधाओं तथ्यों घटनाओं आदि का ज्ञान आदि आता है।

2. कौशलात्मक उद्देश्य :– कला के कौशल का उत्त्रोत्तर विकास, कला के अनुरूप क्रियायें का प्रस्तुतीकरण कला कार के मनोभाव की समझ विचारों एवं तथ्यों की समझ एवं उनका आकलन।

3. रसात्मक एवं समीक्षात्मक उद्देश्य :– प्रसन्नता एवं आनंद की अनुभूति का रसास्वादन, प्रकृति एवं वातावरण के सौन्दर्य की पहचान, सांस्कृतिक विरासत में मौजूद कला के विभिन्न रसों की पहचान आदि। कलाकार कार्यों की समीक्षा एवं समकालीन कला का तुलनात्मक समीक्षा आदि।

4. सृजनात्मक उद्देश्य :– इस उद्देश्य के तहत विद्यर्थियों में कला सृजन को प्रेरणा देना तथा कला में मौलिकता लाने की योग्यता का विकास करने के लिए प्रेरित करना हैं।

5. अभिवृत्यात्मक उद्देश्य :– इस उद्देश्य का मूल विद्यार्थियों में उपयुक्त दृष्टिकोण एवं अभिवृत्तियों का विकास करना है। कला में रूचि एवं सद्वृत्तियों का विकास के द्वारा ही कला के विभिन्न आयामों का आकलन सम्भव है।

11.3 कला शिक्षण के परिप्रेक्ष्य में आकलन और मूल्यांकन का अर्थ (Meaning of Assessment and Evaluation in the Context of Art Education)

कला के गुणों एवं उद्देश्यों की जानकारी के उपरान्त कला के आकलन एवं मूल्यांकन हेतु विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। कला के आकलन एवं मूल्यांकन से पूर्व यह आवश्यक है कि पाठक आकलन एवं मूल्यांकन शब्दों का प्रयोग इस परिपेक्ष्य में जानना प्रायः आकलन एवं मूल्यांकन शब्दों को एक दूसरे के स्थान पर किया जाता है, लेकिन उद्देश्य और अर्थ में अंतर है। आकलन का उद्देश्य सीखने के दौरान बच्चों की उपलब्धि की गुणवत्ता की परखना है। जबकि मूल्यांकन का मूल उद्देश्य सीखने–सीखाने की निश्चित अवधि के बाद बच्चों के वास्तविक उपलब्धि स्तर को जाँचना है। बिना यह जाने कि बच्चे ने क्यों और कैसे यह प्राप्त किया है। इस प्रकार मूल्यांकन निर्धारित मानदंड के आधार पर बच्चे के कार्य की गुणवत्ता की जाँच करता है और उस गुणवत्ता को स्थापित करने के लिए उस स्तर को एक मूल्य देना है।

अतः आकलन प्रक्रिया आधारित है वहीं मूल्यांकन उत्पाद आधारित है।

11.4 विभिन्न प्रकार के कला का आकलन(Assessment of Different Form of Art)

कला शिक्षा में सतत् एवं समग्र मूल्यांकन (Continuous and Comprehensive Evaluation, CCE in Art Education) -

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेखा 2005 की अनुशंसा के अनुसार उच्चप्राथमिक स्तर पर कला शिक्षा एक विषय है। जिसका मूल्यांकन कक्षायी स्तर पर की गई विभिन्न कला गतिविधियों के आधार पर करने के प्रक्रिया पर किया गया है।

आकलन को प्रक्रिया की समझ एवं इसके विभिन्न आयामों की अवधारणा हेतु कला के विभिन्न प्रकार को निम्नलिखित उदाहरण से समझा जा सकता है। सतत् एवं समग्र मूल्यांकन; सीखने–सीखाने की प्रक्रिया का

अभिन्न अंग बने यह इसका मुख्य उद्देश्य है और 'सीखना' सम्पूर्ण प्रक्रिया का केन्द्रबिन्दु रहे। इस दर्शन (Philosophy) को ध्यान में रखते हुए विभिन्न कला का मूल्यांकन करना इस प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य है।

11.5 दृश्य कला में मूल्यांकन(Evaluation in Visual Art)

कक्षा छठी में विद्यार्थियों का एक वस्तु आधारित अभ्यास देकर मूल्यांकन किया जाना चाहिए। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों हेतु क्रिया कलाप का चयन व प्रबधन में सावधानी बरती जानी चाहिए। दृष्टिबाधित बच्चों हेतु ग्रीड आदि दिया जा सकता है। इस कला के अभ्यास के दौरान प्रक्रिया को निम्नलिखित चरण में बाँटा जाना चाहिए।

(क) संयोजन क्या है, एक संयोजन (Compositon) हेतु क्या और कैसे चुना जाना चाहिए। इस संबंध में कक्षा में चर्चा की जानी चाहिए। इस चर्चा के दौरान कला शिक्षक भागीदारी के दौरान विद्यार्थियों की काल्पनिक शक्ति और निरीक्षण का आकलन किया जाना चाहिए। प्रमुख कलाकारों की कलाकृतियों का स्लाइड शो दिखाकर कला के प्रति रूचि व समझ पैदा किया जाना चाहिए।

(ख) विद्यार्थियों का समूह बनाकर अपनी चुनी हुई वस्तुओं पर सोचने के लिए एवं चित्रण का संयोजन समझने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इससे कला शिक्षक को विद्यार्थियों का अवलोकन करने व उनकी कल्पना शक्ति का आँकने का अवसर प्रदान करता है।

(ग) विद्यार्थी स्वयं वस्तुएँ लाएँ और व्यवस्थित करे। यह एक समूह गतिविधि है। यहाँ कला शिक्षक प्रकाश के स्त्रोत के अनुसार स्थिर वस्तु चित्रण (Still art) के विन्यास में उनकी सहायता करें। यह विद्यार्थियों को वस्तु के स्थान, टेक्सचर आदि को समझने का मौंका देगी उपं बच्चों की सृजनात्मता को प्रोत्साहित करेगी।

(घ) अब विद्यार्थी व्यक्तिगत रूप से कार्य करेंगे एवं संयोजन बनाएगें और उसमे रंग भरकर कार्य को पूरा करेंगे। कला शिक्षक द्वारा प्रत्येक विद्यार्थी का निरीक्षण किया जाना चाहिए एवं सहयोग भी किया जाना चाहिए।

(ड.) सभी विद्यार्थी अपने कार्यों को पूरा करने के बाद प्रदर्शित करेंगे। वे अपनी अपनी कलाकृतियों का अवलोकन करेंगे और रेखाओं, रंग, संयोजन आदि के आधार पर स्वमूल्यांकन करेंगे एवं टिप्पणी लिखेगें विशेष आवश्यकता वाले बच्चों पर पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए (यदि जरूरत हो तो) यह ध्यान देने योग्य बात है कि कार्य प्रदर्शन सबके साथ होना चाहिए, इसका पृथकीकरण नहीं होना चाहिए।

(च) विद्यार्थियों द्वारा अपने कार्य की पोर्टफोलियों में रखने से पूर्व कला शिक्षक सबके कार्य का आकलन करेगी और टिप्पणी देगी। कार्यों को निम्न मानदंडो के आधार पर आकलन करना चाहिए।

1. निरीक्षण
2. अभिव्यक्ति
3. सृजनात्मकता
4. दक्षता का विकास
5. विभिन्न माध्यमों का उपयोग

कला शिक्षक अपनी टिप्पणी लिखकर रिकार्ड रखेंगे।

कक्षा सातवीं में कला शिक्षक को अक्टुबर माह में विद्यार्थियों से मिट्टी का कार्य (क्ले–मॉडेलिंग) करवाना चाहिए, क्योंकि इस समय विद्यार्थी इस गतिविधि का भरपूर आनंद उठा सकते हैं। इस मौसम में मिट्टी जल्दी सूख जाती

है, जिससे विद्यार्थी अपने सृजनात्मक प्रयास का परिणाम जल्दी पा सकते है। यह माह त्यौहारों का होता है अतः सजावटी वस्तुएँ भी बना सकते है। जैसे दीपावली का दीया आदि। कला शिक्षको द्वारा विद्यार्थियों को चिकनी मिट्टी की विशेषताओं के बारे में बताया जाना चाहिए तथा मूर्त्त वस्तुएँ बनाने के लिए प्रोत्याहित किया जाना चाहिए। यह गतिविधि निम्न चरणों में पूरी की जानी चाहिए।

(क) गतिविधि से पूर्व कला शिक्षकों द्वारा विभिन्न कलाकारों द्वारा निर्मित या हड़प्पा कालीन मटको व टेराकोटा की वस्तुओं का स्लाइड दिखाकर भूमिका तैयार करना चाहिए तथा किए गए कार्य का निरीक्षण कर कला शिक्षकों द्वारा कलाकृति बनाने की प्रतिमा का आकलन करना चाहिए।

(ख) क्ले–मॉडेलिंग से पूर्व बनाए गए स्केचिंग का भी आकलन करना चाहिए। आकलन का आधार सृजनात्मकता एवं दक्षता होनी चाहिए।

(ग) बनाए गए कलाकृतियों का आकलन चर्चा के अनुरूप हुआ है कि नहीं का निरीक्षण करना चाहिए एवं प्रक्रिया के दौरान उनकी रूचि समग्री को पकड़ एवं सृजनात्मता का आकलन करना चाहिए।

(घ) कला कृतियों के सूखने पर गतिविध के अंतिम चरण में रंगने के बाद कलाकृतियों को प्रदर्शन के लिए रखा जाना चाहिए। कार्य की आलोचना एवं स्वमूल्यांकन करना चाहिए।

(ङ.) कला शिक्षकों द्वारा पूर्वनिर्धारित मानदंडो के आधार पर मूल्यांकन/आकलन किया जाना चाहिए और रिकार्ड की अपने पास रखा जाना चाहिए।

कक्षा आठवीं में कला शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों को ऐतिहासिक स्थल भ्रमण तथा उसको देखकर उसके वास्तुशिल्प और अन्य विशेषताओं से अवगत करना चाहिए और अपने अवलोकन के अनुसार चित्रण करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। आवश्यकतानुसार कला शिक्षक इस गतिविधि को इतिहास शिक्षक के साथ भी संयोजित कर सकते है। भ्रमण के दौरान इतिहास शिक्षक स्मारक से जुड़ी बातों से विद्यार्थी को अवगत करना चाहिए। इस गतिविधि के विभिन्न चरण निम्नलिखित है।

(क) कला शिक्षक विद्यार्थियों से विभिन्न कालों से संबंधित स्मारको की विस्तार से चर्चा करके तथा आस पडोस या शहर में कौन से ऐसे स्मारक/ऐतिहासिक स्थल है, जहाँ वे जा सकते हैं की भ्रमण योजना बनानी चाहिए। तैयारी से संबंधित एक चेक लिस्ट (Check List) बनाना चाहिए। विद्यार्थियों की समूहो में जिम्मेदारी निर्धारित करना चाहिए। विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को भी जिम्मेदारी समूह को ही दी जानी चाहिए। कला शिक्षक द्वारा भी एक वर्कशीट तैयार किया जाना चाहिए, जिसमें कुछ संबंधित प्रश्न हो, जिन्हें विद्यार्थियों द्वारा भ्रमण के बाद पूरा करने के लिए कहा जाना चाहिए। इससे विद्यार्थियों की ऐतिहासिक स्मारक के विषय में पूर्वज्ञान क्रियाकलापों का आयोजन करने की दक्षता का आकलन किया जाना चाहिए।

(ख) भ्रमण से पूर्व संबंधित क्षेत्र पर चर्चाएं होनी चाहिए एवं सरक्षण के बारे में बताया जाना चाहिए, अपनी संस्कृति रीति–रिवाज सम्मान करना, इस गतिविधि की मूल आत्मा होनी चाहिए। स्मारक के विभिन्न पहलुओं का चित्रण किया जाना चाहिए। अल्प दृष्टि बाधित या दृष्टिबाधित को भी यथोचित ज्ञान से अवगत कराना चाहिए। कला शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों के कार्य का निरीक्षण एवं आकलन करना चाहिए।

(ग) भ्रमण के पश्चात कक्षा में वर्कशीट पर कार्य, करवाना चाहिए। वर्कशीट में प्रश्न अवलोकन एवं अनुभवों पर आधारित होने चाहिए, जो स्मारक की शिल्पकला, सौन्दर्यानुभूति, इतिहास व अन्य सामाजिक

पहलुओं से संबंधित हो। गतिविधि के दौरान किए गए अवलोकन के आधार पर कला शिक्षक को विद्यार्थियों का आकलन करना चाहिए एवं रिकार्ड रखना चाहिए, जिसका प्रयोग विद्यार्थियों की रिपोर्ट में होना चाहिए, एवं विद्यार्थी के कार्य उनके पोर्टफोलियों रिकार्ड में रखा जाना चाहिए।

विषय वस्तु, क्रिया प्रणाली एवं सामग्री (Contents, Method and Materials) :–

उच्च प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थी को जटिल सामग्रियों एवं विषयों पर कार्य करने के लिए सक्षम बनाना चाहिए। इसके अंतर्गत चित्रकला, पेंटिंग करना, कोलाडा बनाना, क्ले मॉडेलिंग करना, पुतलियाँ बनाना, मुक्त अभिव्यक्ति से अन्य कला कृतियों का निर्माण आदि गतिविधियों के लिए प्रेरित करना चाहिए। विद्यार्थी के स्वयं की कल्पना तथ्यों को समझकर विकसित करने की क्षमता, अवलोकन करना एवं छानबीन करके अभिव्यक्त करने प्रवृतियों पर ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए।

विद्यालय के कला कक्ष की सामग्री व संसाधनों को व्यवस्थित करने हेतु विद्यार्थियों को अवसर देना चाहिए। उन्हें कार्यशालाओं, संग्रहालयों व प्रदर्शनियों के भ्रमण हेतु अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। गतिविधिया का विषय या सामग्री बताए गए क्षेत्र से होना चाहिए। संदर्भ एवं अद्देश्य का संबंध विद्यार्थियों को देखने प्रतिक्रिया करने और अर्थपूर्ण कार्यों को वास्तविक दैनिक अनुभवों से जोड़ने में सक्षम बनाता है एवं यह,

1. वस्तु आधारित
2. जन आधारित
3. परंमराओं पर आधारित
4. वातावरण संबंधित एवं
5. अनुभवों पर आधारित होना चाहिए।

दृश्य कला में रिपोर्ट करने की रूपरेखा :–

- तीन–चार दृश्य कला क्रियाकलापों के बाद कला शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों की रिपोटिंग करनी चाहिए।
- रिपोर्टिंक में विद्यार्थी को डायरी, स्कैचबुक, वर्कशीट इत्यादि के आधार पर आकलन किया जाना चाहिए।
- दृश्य कला के मूल्यांकन में पूर्व निर्धारित मापदंडों का प्रयोग करना चाहिए। सम्पूर्ण मापदंडों व प्रदर्शन के आधार पर कला शिक्षक द्वारा तीन बिन्दुओं वाले मापदंड पर ग्रेड (यथा A, B, C) देना चाहिए। विद्यार्थी की कमजोरियों व विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए टिप्पणी करनी चाहिए।
- टिप्पणी हमेशा सकारात्मक भाषा में दी जानी चाहिए एवं यह भी व्यक्त किया जाना चाहिए कि विद्यार्थी को किस क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता है।

कला शिक्षक द्वारा रिपोर्ट करने के लिए निम्नतालिका बद्ध तरीके से रिपोर्ट किया जा सकता

है, जिसका उपयोग शिक्षकों द्वारा मूल्यांकन के लिए किया जाना चाहिए।

मापदंड	टिप्पणी	प्रदर्शन में सुधार के लिए कार्य
1. निरीक्षण		
2. अभिव्यक्ति		
3. सृजनात्मकता		
4. कौशलों का विकास		
5. विभिन्न माध्यमों का प्रयोग		
6. विभिन्न कला रूपों की सराहना		
7. शिक्षकों द्वारा कोई अन्य पर्यवेक्षण		

11.6 मंचन कला में मूल्यांकन (Evaluation in Performing Art)

गायन, नृत्य व नाटक मंचन कला के अंतर्गत आते हैं। बच्चे रचनात्मक तरीके से इन कला रूपों में प्रदर्शन करते हैं। मंचन कला में दो बातों का ध्यान रखना जरूरी होता है। एक तो स्वतंत्र या रचनात्मक अभिव्यक्ति और दूसरा अनुकरण और आत्मसात् करने की क्षमता, जो इन कला रूपों को सीखने के लिए आवश्यक है। बच्चों को उन की व्यक्तिगत क्षमतानुसार प्रदर्शन करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। मंचन कला के विभिन्न क्षेत्रों में कौशल हमेशा बच्चों के ज्ञान प्रदर्शन और समग्र विकास में योगदान देता है। अतः आकलन या मूल्यांकन में व्यक्तिगत रचनात्मक अभिव्यक्ति और विषय विशेष सीखने का कौशल दोनों पर विचार किया जाना चाहिए।

आकलन की योजना :–

प्रदर्शन कला के प्रत्येक भाग का मापदंड भिन्न है। अतः आकलन के लिए प्रत्येक भाग की चर्चा अलग से करेंगे।

संगीत (Music) :–

उच्च प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों की विभिन्न संगीत रूपों, गायन और वाद्य यंत्रों के प्रति संवेदनशीलता विकसित होनी चाहिए। लोकगीत, समुदायगीत, राष्ट्रीय एकता, संबंधी गीत, भक्तिगीत, शास्त्रीय संगीत इत्यादि भी सीखाया जाना चाहिए। सभी विद्यार्थियों को अपनी कला प्रदर्शन और विभिन्न गतिविधियों जैसे समूहगान, युगलगीत, गायन इत्यादि के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

उदाहरण :– कक्षायी स्तर पर संगीत में माधुर्य, ताल, भाषा, थीम आदि का विशेष स्थान है एवं इन सब के अतिरिक्त संवेदना का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, अतः आकलन के समय सभी गुणों के आधार पर किया जाना चाहिए। कक्षायी स्तर पर भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लोक गीतों को सीखना, संबंधित क्षेत्रों के संस्कृति से अवगत कराता है। वह निम्न प्रकार से कराना चाहिए –

कक्षा VI – उत्तर प्रदेश का लोकगीत

कक्षा VII – गोवा का लोकगीत

कक्षा VIII – राजस्थान का लोकगीत

उपर्युक्त सभी गीतों से जुड़ी गाथाओं या गतिविधियों का ज्ञान छात्रों को देना चाहिए। गीत के सुर–ताल का विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

निरीक्षण :–

- गीत की लय विशेष रूचि की बात होती है, यह विशेषता बच्चों को सीधे राज्य से जोड़ती है।
- लय व ताल को समझ का विकास बच्चों में सृजनात्मकता लाती है एवं एक ही गीत को कई गीतों के साथ गाने के लिए प्रोत्साहित करती है।
- गीत का थीम व भाषा जानने के लिए उत्सुकता पैदा करती है।
- अज्ञान बोलियों व भाषा का गीत होने के बावजूद भी लय व ताल के कारण कक्षा आनन्दमयी व गतिशील वातावरण का निर्माण होता है।
- विद्यार्थियों को विभिन्न राज्यों की संस्कृति, विरासत, खानपान के संबंध में जानने का मौका मिलता है।

ग्रेडिग के लिए निम्न मानदंडों के आधार पर आकलन किया जाना चाहिए –

- स्वभाविक योग्यता सुर और ताल
- स्मरण शक्ति
- एकाग्रता
- भागीदारी／रूचि का स्तर
- सामान्य जागरूकता
- प्रदर्शन
- कौशल वृद्धि

बच्चे का मूल्यांकन उपरोक्त आधार पर किया जाना चाहिए। रिपोर्टिंग यह त्रैमासिक होना चाहिए एवं टिप्पणी सकारात्मक होना चाहिए।

नृत्य (Dance) :–

यह मंचन कला उद्देश्यीय होता है। अतः विद्यार्थियों को सभी प्रकार के शास्त्रीय व लोक नृत्यों से परिचित करवाना चाहिए। शास्त्रीय नृत्य गतिचर्या, संगीत, भावों, साहित्य, पौराणिक, दर्शन, लय, तला, साधना योग आदि का मिला–जुला रूप है, अतः कला रूपों की प्रशंसा व समझ के साथ प्रायोगिक जानकारी भी विद्यार्थियों को अवश्य देनी चाहिए।

यह कला अर्थात् नृत्य अन्य सभी कला रूपों को समावेशित करता है। यद्यपि यह संभव है कि वे बच्चे जिन्हें मूवमेन्ट और दृश्यता संबंधी परेशानी है वे दूसरे बच्चों जैसा प्रदर्शन न कर पाएँ।

निरीक्षण के दौरान निम्न बातों का ध्यान में रखकर आकलन करना चाहिए –

- विद्यार्थी नृत्य के दौरान आनन्द ले रहे हैं।
- एकाग्रता अनुसरण करने की क्षमता व विशेष मुद्रा को प्रदर्शन करने की क्षमता का विकास हो रहा है।
- विद्यार्थियों में आपसी समझ का विकास।

- विभिन्न भावों के प्रदर्शन हेतु शरीर का प्रयोग कर रहे हैं। शरीर का सौन्दर्यात्मक प्रदर्शन कर रहे हैं।
- विभिन्न मुद्राओं का अनुकरण से संबंधित आदि दिए गए मापदंडों के आधार पर शिक्षकों द्वारा त्रैमासिक ग्रेड देकर आकलन किया जाना चाहिए। इसी आधार पर रिपोर्टिंग की जानी चाहिए। आकलन के लिए तालिकाबद्ध तरीके से ग्रेडिंग की जानी चाहिए।
- शारीरिक गतिचर्या।
- सटीक मुद्रा।
- कला शिक्षक व अन्य सहभागी को अनुकरण करने की क्षमता।
- एकाग्रता।
- भागीदारी / रूचि का स्तर।
- सहभागी के लिए सराहना।
- कौशल वृद्धि।
- सामान्य जागरूकता।

आकलन के उपरान्त रिपोर्टिंग अवश्य करना चाहिए, जिसमें सकारात्मक पहलुओं के अतिरिक्त नकारात्मक पहलुओं को सुझाव के साथ उजागर किया जाना चाहिए।

नाटक (Drama) :–

प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर पर नाटक की शिक्षा की उद्देश्य आधुनिक शिक्षा के उद्देश्यों जैसे सृजनात्मता, विवेचनात्मक क्षमताओं, समन्वयन, सामाजिक, सौन्दर्यानुभूति सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों व सम्प्रेषण कौशल इत्यादि का विकास है। इन सब के अतिरिक्त विद्यार्थी सहज अवस्था में सीखते हैं। इस स्थिति में वे न केवल अधिगम में आनन्द लेते है बल्कि विभिन्न अनुभवों द्वारा 'स्वयं के ज्ञान' का निर्माण करते है, जो परम्पागत कक्षा स्थितियों में अकल्पनीय है।

नाटक कला में आकलन करते समय निम्न उद्देश्यों की पूर्ति हो रही है; का खास ध्यान रखा जाना चाहिए।

- निरीक्षण शक्ति और एकाग्रता
- कल्पना शक्ति का विकास व स्व–खोजी प्रवृति का विकास
- प्रबंध के विवेक का विकास
- शारीरिक गतिचर्या की सहायता से अपनी अवधारणा और विचारों का निर्माण करना और उनका प्रबंधन करने की क्षमता का विकास
- मानव संबंधों और उनके विभेदों (Conflicts) के ज्ञान को समझ पैदा करना
- नाटक का प्रयोग विद्यालय की शान्ति व समरूपता हेतु करना।

नाटक के आकलन के लिए निम्नलिखित तालिकाबद्ध तरीके से ग्रेडिंग किया जाना चाहिए –

- योग्यता चरित्रांकन और संप्रेषण भाषा
- रचनात्मकता
- एकाग्रता

- प्रतिभागिता/रूचि का स्तर
- स्थान प्रबंधन
- सहभागिता के लिए सराहना
- प्रस्तुति
- सामान्य जागरूकता

रिपोर्टिंग के लिए उपरोक्त मापदंडों का आधार बनाना चाहिए। सकारात्मक रिपोर्टिंग में सराहना के अतिरिक्त बेहतरी हेतु सुझाव अवश्य देनी चाहिए। इसी प्रकार नकारात्मक रिपोर्टिंग में आलोचनात्मक टिप्पणी के अतिरिक्त सुधार हेतु सुझाव अवश्य देना चाहिए।

11.7 सारांश(Summary)

कला शिक्षा में मूल्यांकन परीक्षा आधारित न होकर सतत् व व्यापक रूप में होना चाहिए। वस्तुतः आदर्श रूप में मूल्यांकन विद्यार्थी अधिगम कैसे करते हैं, स्वयं को विकसित करके अधिगम करते हैं, इस प्रक्रिया का होना चाहिए। यह विषय मुख्यतः प्रतिक्रिया आधारित है और गतिविधि आधारित है, अतः कला में आकलन/मूल्यांकन को कसौटी आधारित और प्रक्रिया आधारित होना चाहिए। मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों ही पक्षों का मूल्यांकन अपेक्षित है।

11.8 अभ्यास के प्रश्न (Question of Exercise)

1. कला शिक्षा के उद्देश्य पर प्रकाश डालें।
   Throw light on the objectives of art education.
2. दृश्य कला के मूल्यांकन की क्या रणनीति होनी चाहिए? कक्षायी स्तर पर इसका वर्णन करें एवं आकलन के समय किन–किन बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए?
   What should be the strategies of evaluation of visual art? Explain it at the level of class and what should be the points to be considered at the time of assessment?
3. मंचन कला से आप क्या समझते है? यह दृश्य कला से कैसे भिन्न है?
   What do you mean by performing art? How is it different from visual arts?
4. मंचन कला के आकलन में किन–किन बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए?
   What should be the points to be considered at the time of assessment of performing arts?

11.9 प्रस्तावित पाठ (*Suggested Readings*)

1. शिक्षा में नाटक एवं कला – प्रो0 (डा0) चित्रलेखा सिंह
2. सतत् एवं समग्र मूल्यांकन कला शिक्षा – राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT)
3. नाट्य, कला और शिक्षा – रीता चौहान

❐ ❐ ❐

इकाई : 12 रबीन्द्रनाथ ठाकुर
Unit : 12 Rabindra Nath Thakur

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

12.0 उद्देश्य (Objective)
12.1 प्रस्तावना (Introduction)
12.2 रबीन्द्रनाथ ठाकुर का जीवन परिचय
(Life Introducation of Rabindra Nath Thakur)
12.3 रबीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाएँ
(Creation of Rabindra Nath Thakur)
12.4 रबीन्द्रनाथ ठाकुर का संगीत
(Music of Rabindra Nath Thakur)
12.5 रबीन्द्रनाथ ठाकुर का चित्रकला
(Painting of Rabindra Nath Thakur)
12.6 टैगोर द्वारा शिक्षा में प्रयोग
(Experiment in Education by Tagore)
12.7 सारांश (Summary)
12.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)
12.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

12.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- ❖ गुरू रबीन्द्रनाथ ठाकुर के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ❖ उनके जीवन परिचय से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ उनकी कला, साहित्य, गीत, संगीत आदि के विषय में जान सकेंगे।
- ❖ इनका कला में दिए गए योगदान को जान सकेगें।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

12.1प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत पाठ इकाई में हम गुरू रबीन्द्रनाथ ठाकुर का कला तथा शिक्षा के क्षेत्र में दिए गए योगदान को पढ़ेगें। उन्होंने अनेक कहानियाँ तथा कविताएँ लिखी। उन्हें कानून की पढ़ाई करने के लिए लंदन भेजा गया। परन्तु, साहित्य में रूचि के कारण उन्होंने कानून की पढ़ाई बीच में ही छोड़ दिया तथा लेखन करने लगे। उन्हें प्रकृति से बहुत प्रेम था। रबीन्द्रनाथ ने लेखन में लोकभाषा का उपयोग शुरू किया। उनकी लिखी दो कविताएँ दो राष्ट्रो यथा भारत तथा बाग्लादेश की राष्ट्रगान बनी। गुरूदेव का यह दर्शन कि अगर तुम वो पथ सही लग रहा है तो उस पथ पर तुम अकेले चल पड़ो यानि एकांतिक के पक्षधर थे तथा 'एकला चलो' का नारा दिए थे। वे कला के पक्षधर थे, उन्होंने शिक्षा के साथ–साथ चित्रकला, नृत्य एवं संगीत में भी अपना अहम योगदान दिया। 'रबीन्द्रनाथ संगीत' ने बाग्ला संस्कृति को एक अलग पहचान दिया है। गुरूदेव ने बालकों की शिक्षा में प्रकृति के संसर्ग को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना तथा "शांति निकेतन" नामक विश्वविद्यालय की स्थापना इसी आशय से की थी। गुरूदेव बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। सहज कला के कई स्वरूपों जैसे– साहित्य, कविता, नृत्य एवं संगीत में उन्होंने अपना अभूतपूर्व योगदान दिया। अपरोक्त सभी बातों की जानकारी इस पाठ में विस्तार से दिया गया है। उपर्युक्त बातों की चर्चा पुस्तुत पाठ में विस्तार से किया गया है।

12.2 रबीन्द्रनाथ ठाकुर का जीवन–परिचय (Life Sketch of Rabindra Nath Thakur)

रबीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म 7 मई, 1861 में कलकत्ता में हुआ था। उनके पिता देवेन्द्रनाथ टैगोर तथा माता का नाम शारदा देवी था। वह एक सम्पन्न बंगाली परिवार में जन्म लिए थे। उन्होंने प्रतिष्ठित सेंट जेवियर स्कूल से पढ़ाई की थी। रबीन्द्रनाथ टैगोर को बचपन से ही कविताएँ और कहानियाँ लिखने का शौक था। टैगोर के पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर एक जाने–माने समाज सुधारक थे। वे चाहते थे कि रबीन्द्र बड़े होकर बैरिस्टर बने और इसके लिए उन्होंने रबिन्द्र को कानून की पढ़ाई के लिए लंदन भेजा। उन्होंने बैरिस्टर बनने की चाहत में 1878 में इंग्लैंड के ब्रिजटोन पब्लिक स्कूल में नाम दर्ज कराया। उन्होंने लंदन कॉलेज विश्वविद्यालय में कानून का अध्ययन किया। लेकिन 1880 में बिना डिग्री हासिल किए ही वापस आ गए। रबीन्द्र का मन साहित्य में ही रमता था तथा अपने मन के भावों को कागज पर उतारना पसंद था। उनके पिता ने उनकी पढ़ाई के बीच में ही भारत वापस बुला लिया और उनके ऊपर धर–परिवार की जिम्मेदारियाँ डाल दी। गुरूदेव को प्रकृति से बहुत प्यार था। वे भारत आकर पुनः लिखना शुरू कर दिया।

रबीन्द्रनाथ ठाकुर एक बांग्ला कवि, कहानीकार, गीतकार, संगीतकार, नाटककार, निबंधकार और चित्रकार थे। टैगोर ने बांग्ला साहित्य में नए गद्य और छंद तथा लोकभाषा के उपयोग की शुरूआत की। रबीन्द्रनाथ ने बहुत कम आयु में काव्य लेखन प्रारंभ कर दिया था। रबीन्द्रनाथ टैगोर ने 1880 के दशक में कविताओं की अनेक पुस्तकें प्रकाशित की। यह संग्रह उनकी प्रतिभा की परिपक्वता का परिचायक है। इनमें से कुछ उनकी सर्वश्रेष्ठ कविताएँ शामिल हैं। इन कविताओं में समसाययिक बंगालियों पर कुछ सामाजिक और राजनीतिक व्यंग्य भी है। इन कविताओं में कई बांग्ला भाषा में अपरिचित नई पद्य शैलियों में हैं।

रबीन्द्रनाथ टैगोर परंपरागत ढांचे के लेखक नहीं थे। वे एक मात्र कवि हैं, जिनकी दो रचनाएँ, दो देशों का राष्ट्रीयगान बनी – (1) भारत का राष्ट्र–गान जन गण मन और बांग्लादेश का राष्ट्रीय गान आमार सोनार बांग्ला। गुरूदेव वैश्विक समानता और एकांतिकता के पक्षधर थे। रबीन्द्रनाथ ब्रह्मसमाजी थे, इसके बावजूद वे एकलवाद को समर्पित थे या कहे कि एक व्यक्ति को समर्पित रहा। हालाँकि उनकी अधिकार रचनाएँ बांग्ला में लिखी गई है। वह एक ऐसे लोक कवि थे, जिनका केन्द्रिय तत्व अंतिम आदमी की भावनाओं का परिष्कार करना था। वह मनुष्य मात्र के स्पंदन के कवि थे। रबीन्द्रनाथ एक ऐसे कलाकार रहें, जिनकी रंगों में शाश्वत प्रेम की गहरी अनुभूति है। वह एक ऐसे नाटककार रहें, जिनके रंगमंच पर सिर्फ 'ट्रेजडी ही जिंदा नहीं है, बल्कि मनुष्य की गहरी जिजीविषा भी दिखती है। वह एक ऐसा कथाकार रहें, जो अपने आस–पास से कथालोक चुनता है, बुनता है। उन कथाओं में न सिर्फ धनीभूत पीड़ा की आवृति या अनावृत किया जा सके, बल्कि उस कथालोक में वह व्यक्ति के अंतिम गंतव्य की तलाश भी करता है।

रबीन्द्रनाथ टैगोर ने 1890 में मानसी की रचना की। यह संग्रह उनकी प्रतिभा की परिपक्वता का परिचायक है।

वर्ष 1913 में रबीन्द्रनाथ टैगोर साहित्य का नोबेल पुरस्कार, उनकी रचना 'गीतांजली' के लिए प्रदान किया गया।

टैगोर ने पश्चिम बंगाल के ग्रामीण क्षेत्र में 1901 में एक प्रायोगिक विद्यालय शांतिनिकेतन की स्थापना की। यह विद्यालय 1921 में विश्व भारती विश्वविद्यालय बन गया।

12.3 रबीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाएँ (Creation of Rabindra Nath Thakur)

बचपन से ही उनकी कविता, छन्द और भाषा में अद्भूत प्रतिमा का आभास लोगों को मिलने लगा था। उन्होंने आठ साल की उम्र में अपनी पहली कविता लिखी थी और अपनी सोलह साल की अवस्था में उनकी पहली लधुकथा प्रकाशित हुई थी। रबीन्द्रनाथ भारतीय संस्कृति में आधुनिक चेतना के वाहक रहें। वह भारतीय संस्कृतिक चेतना में नई जान फूँकने वाले युगदृष्य थे, जिन्होंने सृजन संसार में गीतांजली, पूरबी प्रवाहिनी, शिशु भोलानाथ, महुआ, वनवाजी, परिशेष, पुनश्च, वीथिका, शेषलेखा, चोखेरबाकी, कणिका, नैवेदय मायेर खेला और क्षणिका आदि शामिल है। देश और विदेश के सारे साहित्य, दर्शन, संस्कृति आदि उन्होंने आहरण करके अपने अंदर समेत लिए थे। पिता के ब्रह्म–समाजी होने के करण, टैगोर भी ब्रह्म–समाजी थे। परन्तु उन्होंने सनातन धर्म को अपनी रचनाओं एवं कर्म के द्वारा आगे बढ़ाया।

टैगोर ने अपनी रचनाओं में मनुष्य तथा ईश्वर के बीच जो चिरस्थायी सम्पक है उनकी रचनाओं को भी दर्शाया है। यह भाव अपने अलग–अलग स्वरूपों में दिखाता है। साहित्य की शायद ही ऐसी कोई विधा हो, जिनमें गुरूदेव की रचना ना हो, वह चाहे कविता हो, गाना हो, कथा, उपन्यास, नाटक प्रबंध, शिल्पकला सभी विद्याओं में उन्होंने अपना योगदान दिया है। उनकी प्रकाशित कृतियों में गीतांजली, गीताली, गीतिशाल्य, कथाओं कहानी, शिशु, शिशु भोलानाथ, कणिका, क्षणिका श्वेया आदि प्रमुख है। उन्होंने कुछ पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद भी

किया, जिससे उनकी प्रतिभा पूरे विश्व में फैल गई।

सियालदह और शजादपुर स्थित उनकी खानदानी जायदाद के प्रबंधन के लिए 1891 में टैगोर ने 10 वर्षों तक पूर्वी बंगाल (वर्त्तमान बांगला देश) में रहें, वहाँ वे अक्सर पद्या नदी (गंगा नदी) पर एक बोट हाउस में ग्रामीणों के संपर्क में रहें। उन ग्रामीणों की निर्धनता व पिछड़ेपन के प्रति टैगोर की संवेदना, टैगोर की रचनाओं में मूलरूप से दृष्टिगोचर होती हैं। इनकी रचनाओं में दीन—हीनों का जीवन और उनकी छोटे—मोटे दुख वर्णित है। 1890 के बाद की रचनाओं में मार्मिकता में हल्का—सा विडंबना का पुट है। यह टैगोर की निजी विशेषता है।

गल्पगुच्छ की तीन जिल्दों में उनकी सारी चौरासी कहानियाँ संग्रहीत हैं। 1891 से 1895 के बीच का पाँच वर्षों का समय रबीन्द्रनाथ की साधना का महान काल था। वे अपनी कहानियाँ सबुज पत्र (हरे पत्ते) में छपाते थे। आज भी पाठकों को उनकी कहानियों में 'हरे पत्ते' और 'हरे गाछ' मिल सकते हैं। उनकी कहानियों में सूर्य, वर्षा, नदियाँ और नदी किनारे के सरकंडे, वर्षा ऋतु का आकाश, छायादार गाँव, वर्षा से भरे खेत, अनाज के प्रसन्न खेत आदि मिलती हैं। टैगोर की कहानियों के साधारण लोग कहानी खत्म होते—होते असाधारण मनुष्यों में बदल जाते हैं। उनकी मूक पीड़ा की करूणा हमारे ह्रदय को अभिभूत कर देती है तथा महानता की पराकाष्ठा छू जाती है।

उनकी कहानी पोस्टमास्टर इस बात का सजीव उदाहरण है कि एक सच्चा कलाकार साधारण उपकरणों से कैसे अद्भूत सृष्टि कर सकता है। इस कहानी में केवल दो सजीव साधारण से पात्र है। जिसमें बहुत कम घटनाओं से भी वे अपनी कहानी का महल खड़ा कर देते हैं। इसमें उनकी मूक पीड़ा की करूणा हमारे ह्रदय को अभिभूत कर देती है। 'काबुलीवाला' कहानी में एक एक छोटी लड़की कैसे बड़े—बड़े इंसानों को अपने स्नेह पास में बाँध देती है। इस बात का जीता—जागता उदाहरण है। रबीन्द्रनाथ ने पहली बार अपनी कहानियों में साधारण की महिमा का बखान किया। रबीन्द्रनाथ की कहानियों में अनपढ़ "काबुलीवाला" और सुसंस्कृत बंगाली भूत, भावनाओं में एक समान हैं। उनकी कल्पना पात्रों के साथ अद्भूत सहानुभूतिपूर्ण एकात्मकता और उनके चित्रण का अतीत सौंदर्य, रबीन्द्रनाथ की कहानी को सर्वश्रेष्ठ बना देता है। जिसे पढ़कर द्रवित हुए बिना नहीं रहा जा सकता है। उनकी कहानियाँ फौलाद को मोम बनाने की क्षमता रखती है।

अतिथि का तारापद रबीन्द्रनाथ की अविस्मरणीय सृष्टियों में से एक है। इसका नायक कहीं बांधकर नहीं रह सकता है। वह आजीवन 'अतिथि' ही रहता है। क्षुधित पाषाण, आधी रात में (निशीशे) तथा 'मास्टर साहब' प्रस्तुत संग्रह की इन तीनों कहानियों में देवी तत्व का स्पर्श मिलता है। 'क्षुधित पाषाण' में कलाकार की कल्पना अपने सुदरतम् रूप में व्यक्त हुई है। यहाँ अतीत वर्त्तमान के साथ वार्तालाप करता हूँ दिखता है; जहाँ रंगीन प्रभामय अतीत के साथ नीरस वर्त्तमान नजर आता है। रबीन्द्रनाथ के लिए समाज में महिलाओं का स्थान तथा नारी जीवन की विशेषताएँ, उनके लिए गंभीर चिंता के विषय रहे थे। इस विषय पर उनकी गहरी अंर्तदृष्टि का परिचय मिलता है।

रबीन्द्रनाथ टैगोर ने ज्यादातर अपनी पद्य कविताएँ के लिए जाने जाते है, टैगोर ने अपने जीवनकाल में

कई उपन्यास, निबंध, लधु कथाएँए यात्रावृन्तात, नाटक और हजारों गाने भी लिखे हैं। टैगोर की गद्य में लिखी उनकी छोटी कहानियों को शायद सबसे अधिक लोकप्रिय माना जाता है। इस प्रकार इन्हें वास्तव में बंगाली भाषा के संस्करण की उत्पत्ति का श्रेय दिया जाता है। उनके काम अक्सर उनके लयबद्ध, आथावादी और गीतात्मक प्रकृति के लिए काफी उल्लेखनीय हैं। टैगोर ने इतिहास, भाषा विज्ञान और अध्यात्मिकता से जुड़ी कई किताबें लिखी थी। टैगोर के यात्रावृतांत, निबंध और व्याख्यान कई खंडों में संकलित किए गए थे, जिसमें यूरोप से पत्र और मनुशर धरमो (द रिलिजन ऑफ मैन) शामिल थे। **अल्बर्ट आइंस्टीन** के साथ उनकी संक्षिप्त बातचीत, "वास्तविकता की प्रकृति पर नोट" बाद के उत्तरार्द्धों में एक परिशिष्ट के रूप में शामिल किया गया है।

टैगोर की कविताओं की पांडुलिपि को सबसे पहले **विलियम रोथेनस्टाइन** ने पढ़ा था और वे इतने मुग्ध हो गए कि उन्होंने अंग्रेजी कवि योट्स से संपर्क किया। योट्स ने टैगोर का परिचय पश्चिमी जगत के लेखकों, कवियों, चित्रकारों और चिंतकों से टैगोर का परिचय कराया। उन्होंने इंडिया सोसायटी से इसके प्रकाशन की व्यवस्था की। शुरू में 750 प्रतियाँ छापी गई, जिनमें से सिर्फ 250 प्रतियाँ ही बिक्री के लिए थी। बाद में मार्च 1913 में मेकमिलन एवं कंपनी लंदन ने इसे प्रकाशित किया और 13 नबंवर 1913 को नोबेल पुरस्कार की घोषणा से पहले इसके दस संस्करण छापने पड़े। यीट्स ने टैगोर के अंग्रेजी अनुवादों का चयन करके उनमें सुधार किए और टैगोर के पास अंतिम स्वीकृति के लिए भेजा। यीट्स ने ही अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका लिखी। बाद में गीतांजली का जर्मन, फ्रेंच, जापानी, रूसी आदि विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में अनुवाद हुआ तथा टैगोर की ख्याति विश्व के कोने–कोने में फैल गई।

12.4 रबीन्द्रनाथ ठाकुर का संगीत (Music of Rabindra Nath Thakur)

रबीन्द्रनाथ ने 2230 गीतों की रचना की। वास्तव में, रबीन्द्र संगीत बांग्ला संस्कृति का अभिन्न अंग है। टैगोर के संगीत को उनके साहित्य से अलग नहीं किया जा सकता है। उनकी अधिकतर रचनाएँ अबतक उनके गीतों में शामिल हो चुकी है। गुरूदेव हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की ठुमरी शैली से बहुत प्रभावित थे। उनके संगीत में मानवीय भावनाओं के अलग अलग रंगों को प्रस्तुत करते हैं। अलग–अलग रागों में गुरूदेव के गीत यह आभास कराते हैं कि मानों उनकी वह रचना विशेष, उस राग विशेष के लिए ही की गई थी। गुरूदेव को प्रकृति के प्रति गहरा लगाव था। यह प्रकृति प्रेमी ऐसा एकमात्र व्यक्ति है जिसने दो दोशों के लिए राष्ट्रगान लिखा। राष्ट्रगान (जन गण मन) के रचयिता टैगोर को बंगाल के ग्राभ्यांचल से प्रेम था और पद्या नहीं भी उन्हें अतिप्रिय थी, जिसकी छवी उनकी कविताओं में बार–बार उभरती है। उन वर्षों में उनके कई कविता संग्रह और नाटक आए। जिनमें सोनार तरी (1894, सुनहरी नाव) तथा चित्रांगदा 1892 उल्लेखनीय है। वैसे तो टैगोर की कविताओं का अनुवाद लगभग असंभव है और बांग्ला समाज के सभी वर्गों में आज तक जनप्रिय उनके संगीत को 'रबीन्द्र संगीत' के नाम से जाना जाता है। गुरूदेव रबीन्द्र नाथ की कविता 'वंदेमातरम' बांग्ला देश का राष्ट्र गीत है।

12.5 रबीन्दनाथ ठाकुर की चित्रकला (Painting of Rabindra Nath Thakur)

गुरूदेव बहुकला के धनी थे। हालांकि उन्हें कला की कोई औपचारिक शिक्षा नहीं मिली थी। वाबजूद इसके उन्होंने एक सशक्त एवं सहज दृश्य शब्दकोष का विकास कर लिया था। गुरूदेव की इस उपलब्धि के पीछे

आधुनिक, पाश्चात्य, पुरातन एवं बाल्य कला जैसे दृश्य कला के विभिन्न स्वरूपों की उन्हें गहरी समझ थी। इसका आरंभ टैगोर की पांडुलिपियों में एक अवचेतन प्रक्रिया के रूप में दृष्टिगोचर होती है। पांडुलिपियों में उभरती और मिटती रेखाएँ एक खास स्वरूप लेने लगी। धीरे–धीरे टैगोर ने कई चित्रों को उकेरा, जिनमें कई चित्र के बेहद काल्पनिक एवं विचित्र जानवरों, मुखौटों रहस्यमयी मानवीय चेहरा, गूढ़ भू–परिदृश्यों, चिड़ियों एवं फुलों के चित्र थे। उनकी कृतियों में फंतासी, लयात्मकता एवं जीवंतता का अद्भूत संगम दिखता है। उनकी कला में, कल्पना की शक्ति ने जो विचित्रता प्रदान की है, उसकी व्याख्या शब्दों में संभव नहीं है।

साठ के दशक के उत्तरार्ध में टैगोर की चित्रकला यात्रा शुरू हुई। यह उनके कवित्य सजगता का विस्तार था। उनके चित्र कभी–कभी तो अप्राकृतिक रूप से रहस्यमयी और कुछ धुंधली याद दिलाते हैं। तकनीकी रूप से टैगोर ने सृजनात्मक स्वतंत्रता का आनंद लिया। उनके पास कई उद्वेलित करने वाले विषय थे, जिनको लेकर कैनवस पर रंगीन रोशनाई से किया पुता चित्र बनाने में भी उन्हें हिचक नहीं हुई। उनके द्वारा रोशनई से बने चित्र में एक स्वच्छंदता दिखती है, जिसके तहत कूची, कपड़ा, रूई के फाहों तथा हाथ की उगंलियों का भी बखूबी इस्तेमाल किया गया है। गुरूदेव के लिए कला मनुष्य को दुनिया से जोड़ने का माध्यम है। आधुनिकवादी होने के नाते टैगोर विशेषकर कला के क्षेत्र में पूरी तरह समकालीन थे।

12.6 टैगोर द्वारा शिक्षा में प्रयोग (Experiment in Education by Tagore)

टैगोर को बचपन से ही प्रकृति से बहुत लगाव था। वह हमेशा सोचा करते थे कि प्रकृति के सानिध्य में ही विद्यार्थियों को अध्ययन करना चाहिए। इसी सोच को मूर्तरूप देने के लिए वह 1901 में सियालदह छोड़कर आश्रम की स्थापना करने के लिए शांतिनिकेतन आ गए। उन्होंने प्रकृति के सान्निध्य में पेड़ों, बगीचों और एक पुस्तकालय के साथ शांतिनिकेतन की स्थापना की।

शांतिनिकेतन की स्थापना 1901 में हुआ। यह एक प्रायोगिक विद्यालय था; जहाँ उन्होंने भारत और पश्चिमी परंपराओं के सर्वश्रेष्ठ को मिलाने का प्रयास किया। वह विद्यालय में ही स्थायी रूप से रहने लगे और 1921 में यह विश्व भारती विश्वविद्यालय बन गया। 1902 तथा 1907 के बीच उनकी पत्नी तथा दो बच्चों की मृत्यु से उपजा गहरा दुःख उनकी बाद की कविताओं में परिलक्षित होता है, जो पश्चिमी जगत् में गीतांजली (साँग ऑफ रिंग्स) 1912 के रूप में पहुँचा। शांति निकेतन में उनका जो सम्मान समारोह हुआ था। इसका सचित्र समाचार भी कुछ ब्रिटिश समाचार पत्रों में छपा था। 1908 में कोलकाता में हुए कांग्रेस अधिवेशन के सभापति और बाद में ब्रिटेन के प्रथम लेबर प्रधानमंत्री **रेम्जे मेक्डोनाल्ड** 1914 में एक दिन के लिए शांति निकेतन गए थे। उन्होंने शांति निकेतन के संबंध में पार्लियामेंट के एक लेबर सदस्य के रूप में जो कुछ कहा वह भी ब्रिटिश समाचार पत्रों में छपा। उन्होंने शांति निकेतन के संबंध में सरकारी नीति की भर्त्सना करते हुए इस बात पर चिंता व्यक्त की थी कि शांति निकेतन में सरकारी सहायता मिलना बंद हो गई है।

गुरूदेव की मृत्यु 7 अगस्त, 1941 में कलकत्ता में हुई थी।

12.7 सारांश (Summary)

इस पाठ के अंतर्गत हमने गुरूदेव रबीन्दनाथ ठाकुर के विषय में पढ़ा। गुरूदेव का यह मानना था कि शिक्षा प्रकृति के सानिध्य में दिया जाना चाहिए। शिक्षा देने के क्रम में कला, संगीत, काव्य, चित्रकला आदि का माध्यम बनाया जाता है। इन माध्यमों का उपयोग करके बालक को रूचिपूर्ण शिक्षा दी जा सकती है क्योंकि यह शिक्षा देने के स्वतः स्फुर्त माध्यम है।

इस पाठ के अंतर्गत हमने पढ़ा कि रबीन्दनाथ को शिक्षा–दीक्षा का माहौल, उनके सोचने समझने की क्रिया पर अपना प्रभाव किस प्रकार डाला। उनके किन आध्यात्मिक एवं साहित्यिक गुणों पर विश्व जगत् के कवि तथा साहित्य में रूचि रखने वाले लोग मुग्ध हुए। उन्होंने संगीत जगत्, चित्रकला, लेखन आदि में अप्रतिम योगदान दिया। आशा है यह पाठ पढ़ने वाले को गुरूदेव के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारियाँ देने में सहायक सिद्ध होगा।

12.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. गुरूदेव रबीन्द्रनाथ ठाकुर का जीवन परिचय दें।
   Give a detail of life Sketch of Gurudev Rabindranath Thakur.
2. निम्नलिखित बिंदुओं पर टिप्पणी लिखें –
   Write a short notes on the topics -
   (a) गुरूदेव का संगीत में योगदान (Contribution in music of Gurudev).
   (b) रबीन्द्रनाथ का चित्रकला (Painting of Rabindra Nath).
   (c) गुरूदेव का सम्मान (Honours of Gurudev).
   (d) रबीन्द्रनाथ की कविताएँ (Poetries of Rabindra Nath).

12.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. Tagor & Chakravarty 1961 Page - 45.
2. Tagor, Dutta & Robinson 1996.
3. "Pandey 2011" अधिगमन तिथि, 9 दिसम्बर 2017.
4. अ आ Rabindranath Tagor - Facts Nobel Prize.

❐ ❐ ❐

इकाई : 13 इलियट वेन ईस्नर
Unit : 13 Elliot Wayne Eisner

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

13.0 उद्देश्य (Objective)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

13.2 जीवनी(Biography)

13.3 कार्य (Work)

13.4 योगदान (Contribution)

13.5 सारांश (Summary)

13.6 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

13.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

13.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् छात्र शिक्षक :

- ❖ इलियट वेन ईस्नर के विषय में जान सकेंगे,
- ❖ इलियट वेन ईस्नर के कार्यों से रूबरू हो सकेंगे,
- ❖ इलियट वेन ईस्नर के शिक्षा क्षेत्र में योगदान को समझ सकेंगे,
- ❖ कला के क्षेत्र के योगदान से रूबरू होंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

13.1प्रस्तावना (Introduction)

इलियट वेन ईस्नर अमेरिका के स्टैनफोर्ड स्कूल ऑफ एजुकेशन में कला तथा शिक्षा के प्रोफेसर थे। इस इकाई के अंतर्गत उनके जीवनी के विषय में विस्तृत चर्चा की गई है। इस इकाई में शिक्षा तथा कला के क्षेत्र में इनके योगदानों को भी बतलाया गया है। इलियट ईस्नर कला तथा शिक्षा के क्षेत्र में दूरदर्शी थे। उनके कार्यों को भी इस इकाई के अंतर्गत बतलाया गया है।

13.2 जीवनी (Biography)

ईस्नर का जन्म शिकागो में 10 मार्च 1933 को रूसी यहूदी प्रवासी के एक परिवार में हुआ था। उनके पिता लुई ईस्नर रूसी साम्राज्य में पैदा लिये थे लेकिन 1905 में अमेरिका आकर बस गये थे। वे बैलो तथा चमड़े संबंधी उद्योग से जुड़े थे। ईस्नर के पिता इंटरनेशनल फर एंड लेदर वकर्स यूनियन से जुड़े थे। ईस्नर अपने पिता की वजह से हीं समाजवादी विचार धारा से प्रेरित थे। ईस्नर की माँ इवा बेला रूस की थी। इलियट ईस्नर ने अपनी एम0 ए0 (1958) तथा पीएच0 डी0 (1962) डीग्री शिकागो विश्वविद्यालय से किया था। इलियट वेन ईस्नर का 1997 एवं 2004 में वुक्श सर हर्बर्ट रीड अवार्ड तथा ब्रॉक इंटरनेशनल पुरस्कार से नवाजा गया था।

वे 1965 में स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में शिक्षा तथा कला के एसोसियट प्रोफेसर के रूप में नियुक्त हुये थे। वे अनुशासन आधारित कला शिक्षा का समर्थन किये थे। ईस्नर कक्षा में रचनात्मक सोच की कमी महसुस कर रहे थे। पब्लिक विद्यालय में वे पाठ्यक्रम की वर्चस्वता के बजाय विकासशील पाठ्यक्रम तथा छात्रों के प्रदर्शन में कलात्मक दृष्टिकोण का प्रयोग किया। 'संकट के समय में पाठ्यचर्या के विचार' नामक लेख में ईस्नर ने कला शिक्षा में संकट के विषय में कार्रवाई करने के लिए एक आहवान करता है। उनका कहना था कि हमलोग कला शिक्षा के संकट को पहचानते हैं। यह संकट हमें अवसर भी प्रदान करते हैं। कला शिक्षा के संकट का कारण उसके पढ़ाने की पद्धति है। ईस्नर के अनुसार कला शिक्षा को समझने के बजाय काम के विस्तार के माध्यम पर केन्द्रित होना चाहिए। इलियट ईस्नर की मृत्यु 10 जनवरी 2014 को पार्किन्सन रोग से हुई थी।

13.3 इलियट वेन ईस्नर के कार्य (Work of Elliot Wen Eisner)

इलियट वेन ईस्नर का प्रारंभिक कार्य मुख्यतः कला में ध्यान देना तथा अमेरिकी पाठ्यक्रम में कमी पर ध्यान देना था। वे कहना चाहते थे कि अन्य विषयों की तरह कला को भी महत्व मिलना चाहिए क्योंकि रचनात्मकता के लिए यह आवश्यक है। उनका यह भी मानना था कि रचनात्मकता की शिक्षा की जिम्मेवारी सभी विषयों पर होनी चाहिए। गणित से लेकर विज्ञान तक सभी विषयों में एक कला है, इसलिए केवल कला शिक्षकों पर यह जिम्मेवारी नहीं छोड़ना चाहिए। कला को एक विशेष काल्पनिक क्षमता के रूप में नहीं ब्लकि आम क्षमता के रूप में देखनी चाहिए। कला के प्रति इलियट वेन ईस्नर का प्रेम अदभूत था वे पाठ्यक्रम विकास तथा शिक्षक के शिक्षण कला संदर्भ में भी अनेक अवसर दिये थे। 1980 के दशक में शैक्षिक समझ के लिए डेनीस सी फिलिप्स के साथ मिलकर कई गुणात्मक अनुसंधान में तथ्यों का आदान प्रदान किए। ईस्नर ने हार्वड गार्डनर के साथ मिलकर भी काम किये ताकि उपन्यास जैसे काम को निबंध के रूप मं प्रस्तुत किया जा सके। उस समय के बाद पाठ्यक्रम में उपन्यासों को सफलता पूर्वक प्रस्तुत किया गया। उनके कार्य में सैकड़ों लेख तथा एक दर्जन से अधिक पुस्तके शामिल थी। उन्होंने कई शैक्षिक संगठनी के अध्यक्ष के रूप में कार्य किया जिनमें अमेरिकन एजुकेशन रिसर्च एसोसियशन, नेशनल आर्ट एजुकेशन एसोसियशन, इन्टरनेशनल सोसाइटी फॉर एजुकेशन एण्ड आर्ट तथा जॉन डेवी सोसाइटी शामिल है।

13.4 इलियट ईस्नर के योगदान(Contribution of Elliot Eisner)

इलियट वेन ईस्नर का शिक्षा तथा कला के क्षेत्र में अहम योगदान था। उनके अनुसार युवा छात्रों में कौशल विकसित करने के लिए कला की भूमिका महत्वपूर्ण है।

(i) कला बच्चों को समस्याओं का अनेक समाधान सिखाते हैं।समस्याओं का एक से अधिक सामाधान हो सकता है।

(ii) कला के द्वारा बच्चे गुणात्मक संबंधों के विषय में अच्छे निर्णय लेना सिखते हैं।

(iii) कला बच्चों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाती है। अतः ईस्नर ने यह योगदान दिया कि कला के द्वारा बच्चे दुनिय को कई तरीको से व्याख्या कर सकते हैं।

(iv) ईस्नर के अनुसार कला शिक्षा द्वारा बच्चे परिस्थिति और अवसर के अनुसार आसानी से बदल जाते है तथा कला में सीखने तथा कार्य करने की अप्रत्याशित संभावनाओं को देखा जा सकता है।

(v) ईस्नर का शिक्षा के क्षेत्र में ये भी योगदान है कि भाषा की सीमाएं, संज्ञान की सीमाओं को परिभाषित नहीं करती है।

(vi) कलाओं की माध्यम से अनुभवों की विविधता की खोज कर सकते हैं।

(vii) विद्यालय में कला के पाठ्यक्रम की माध्यम से, बच्चों के चिन्तन में व्यापक परिवर्त्तन लाया जा सकता है।

(viii) कला छात्रों को सामग्री के माध्यम से अन्दर और बाहर सोचना सीखाती है।

(ix) कला विद्यालय के पाठ्यक्रम को व्यापक बनाती है।

(x) कला बच्चों में एक व्यापक दृष्टिकोण का सृजन करती है। वे बच्चों को दुनिया को देखने तथा व्याख्या करने के विभिन्न तरीकों से अवगत कराते हैं।

13.5 सारांश(Summary)

इलियट वेन ईस्नर (10 मार्च 1933 से 10 जनवरी 2014) स्टैनफोर्ड ग्रेजुष्ट स्कूल आफ एजुकेशन में कला तथा शिक्षा के प्रोफेसर थे। कला के क्षेत्र में उनका अहम योगदान था। कला के माध्यम से शिक्षा को और अधिक प्रभावी बनाने की प्रक्रिया के संबंध में वे विस्तृत जानकारी दिये। उनका कार्य शिक्षा पाठ्यक्रम, सुधारात्मक तथा गुणात्मक अनुसंधान के क्षेत्र में है। उनके काम के लिए ईस्नर को 2004 म बॉक इंटरनेशनल पुरस्कार से नवाजा गया। ईस्नर का काम अनुशासन आधारित कला शिक्षा पर है। वे कलात्मक दृष्टिकोण के साथ विकासशील पाठ्यक्रम पर जोर दिया।

13.6 अभ्यास के प्रश्न (Question of Exercise)

1. इलियट वेन ईस्नर के जीवनी एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।
   Describe the biography and works of Elliot Wayne Eisner.
2. इलियट वेन ईस्नर के कार्यों तथा योगदानों की विवेचना कीजिए।
   Discuss the works and contribution of Elliot Wayne Eisner.

13.9 प्रस्तावित पाठ *(* Suggested Readings)

1. अग्रवाल पब्लिकेशन, नाट्यकला और शिक्षा रीता चौहान।
2. अग्रवाल पब्लिकेशनः कला शिक्षा, स्नेहलता चर्तुवेदी।
3. विनोद पुस्तक मंदिरः शिक्षा में नाटक एवं कला, प्रो0 (डॉ0) चित्रलेखा सिंह।
4. प्रकाशन विभागः भारतीय कला और कलाकार, ई कुमारिल स्वामी।

इकाई : 14 आनन्द केंटिस मुथु कुमारस्वामी
Unit : 14 Anand Kentis Muthu Coomaraswamy

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

14.0 उद्देश्य (Objective)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

14.2 कुमारस्वामी का जीवन परिचय (Coomaraswamy's Life)

14.3 कला एवं शिक्षा के क्षेत्र में योगदान
(Contribution in the Field of Art & Education)

14.4 सारांश (Summary)

14.5 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

14.6 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

14.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- ❖ कुमारस्वामी के जीवन से परिचित हो सकेंगे।
- ❖ कला एवं शिक्षा के क्षेत्र में कुमारस्वामी के योगदान से अवगत हो सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

यह इकाई इस पाठ की सत्तरहवीं इकाई है। इस इकाई में कुमारस्वामी के जीवन के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। कुमारस्वामी का कला एवं शिक्षा के क्षेत्र में कौन–कौन से योगदान हैं, इसकी भी चर्चा विस्तारपूर्वक की गई है।

14.2 जीवन परिचय (Coomaraswamy's Life)

आनन्द केंटिस मुथु कुमारस्वामीः एक सीलोनियन तमिल दार्शनिक और तत्वज्ञानी के साथ–साथ एक अग्रणी इतिहासकार और भारतीय कला के दार्शनिक, विशेष रूप से कला इतिहास और प्रतीकवाद और पश्चिम में भारतीय संस्कृति के प्रारंभिक व्याख्याकार थे। विशेष रूप से उन्हें ग्राउंडब्रेकिगं सिद्धांतकार के रूप में वर्णित किया गया है जो प्राचीन भारतीय कला को पश्चिम में पेश करने के लिए काफी हद तक जिम्मेदार थे।

आनन्द केंटिश कुमारस्वामी का जन्म (22 अगस्त 1877) कोलंबो, सिलोन (जो अब श्रीलंका में हैं) के पोन्नमबलम कुमारस्वामी परिवार के तमिल विधायक तथा दार्शनिक सर मुथु कुमारस्वामी तथा उनकी अंग्रेज पत्नी एलिजाबेथ बीबी के घर में हुआ। आनन्द के दो साल के होने पर उनके पिता का देहांत हो गया और आनन्द ने अपना बहुत सारा बचपन और शिक्षा विदेश में बिताई।

कुमारस्वामी 1879 में इंग्लैंड चले गए और बारह साल की उम्र में स्ट्रॉएड, ग्लोंस्टरशायर के एक प्रारंभिक स्कूल विक्लिफ कॉलेज से पढ़ाई किया। 1900 में, उन्होंने यूनिवर्सिटी कॉलेज, लंदन से भूविज्ञान और वनस्पति विज्ञान में डिग्री हासिल की। 19 जून 1902 को, कुमारस्वामी ने एक अंग्रेज फोटोग्राफर Ethel Mary Partridge से शादी की, जिसने तब उनके साथ सीलोन की यात्रा की। उनकी शादी 1913 तक चली। 1902 और 1906 के बीच कुमारस्वामी के क्षेत्र कार्य ने उन्हें सीलोनियम खनिज विज्ञान के अपने अध्ययन के लिए उन्हें 'विज्ञान में डॉक्टरेट' दिया और सीलोन के भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण के गठन को प्रेरित किया, जिसे उन्होंने शुरू में निर्देशित किया था। सीलोन में रहते हुए इस युगल ने मध्यकालीन सिंहली कला पर साथ मिलकर काम किया; कुमारस्वामी ने पाठ लिखा और Ethel ने तस्वीरें प्रादान कीं। सीलोन में उनके काम ने कुमारस्वामी की पश्चिमीकरण विरोधी भावनाओं को हवा दी। उनके तलाक के बाद, पर्ट्रिज इंग्लैंड लौट गई, जहां वह एक प्रसिद्ध जुलाहा बन गई और बाद में लेखक फिलिप मैरेट से शादी कर ली।

1906 तक, कुमारस्वामी ने भारतीय कला के बारे में पश्चिम को शिक्षित करने को अपना मिशन बना लिया था और तस्वीरों के एक बड़े संग्रह के साथ लंदन में वापस आ गए थे, सक्रिय रूप से कलाकारों को प्रभावित करने की कोशिश कर रहे थे। वह जानते थे कि वह संग्रहालय क्यूरेटर या सांस्कृतिक प्रतिष्ठान के अन्य सदस्यों पर भरोसा नहीं कर सकते थे। 1908 में उन्होंने लिखा था "अब तक की मुख्य कठिनाई यह है कि भारतीय कला को केवल पुरातत्वविदों द्वारा अध्ययन किया गया है। यह पुरातत्वविदों का नहीं, बल्कि कलाकारों का क्षेत्र है, जो कला के रूप में माने जाने वाले कला के कार्यों के महत्व को पहचानने के लिए सबसे योग्य हैं।" 1909 तक, वह शहर के दो सबसे महत्वपूर्ण आधुनिकतावादी जैकब एपस्टीन और एरिक गिल के साथ भलीभांति परिचित थे और जल्द ही दोनों ने अपने काम में भारतीय सौंदर्यशास्त्र को शामिल करना शुरू कर दिया था। एक परिणाम के रूप में उत्पन्न की गई जिज्ञासु हाइब्रिड मूर्तियों को ब्रिटिश आधुनिकतावाद के रूप में देखा जा सकता है।

कुमारस्वामी ने फिर ब्रिटिश महिला ऐलिस एथेल रिचर्डसन से शादी करके भारत गए और कश्मीर में श्रीनगर में एक हाउसबोट पर रहे। कुमारस्वामी ने राजपूत चित्रकला का अध्ययन किया, जबकि उनकी पत्नी ने कपूरथला के अब्दुल रहीम के साथ भारतीय संगीत का अध्ययन किया। जब वे इंग्लैंड लौटे, तो एलिस ने रतन देवी के नाम से भारतीय गीत का प्रदर्शन किया। एलिस सफल रही और रतन देवी के संगीत कार्यक्रम के लिए

दोनों अमेरिका गए। अमेरिकावास में बोस्टन संग्रहालय के ललित कला में भारतीय कला के पहले रक्षक के रूप में सेवा करने के लिए कुमारस्वामी को 1917 में आमंत्रित किया गया। दंपति के दो बच्चे थे, एक बेटा, नारद और बेटी, रोहिणी।

अमेरिका पहुंचने के बाद कुमारस्वामी ने अपनी दूसरी पत्नी को तलाक दे दिया। उन्होंने नवंबर 1922 में अमेरिकी कलाकार स्टेला बलोच से शादी की जो कि आयु में उनसे 29 वर्ष छोटी थी। 1920 के दशक के दौरान, कुमारस्वामी और उनकी पत्नी न्यूयॉर्क शहर में बोहेमियन कला मंडलियों का हिस्सा थे। कुमारस्वामी ने अल्फ्रेट स्टिग्लिट्ज तथा उन कलाकारों से, जिसने स्टिग्लिट्ज की गैलरी में प्रदर्शन किया, से दोस्ती की। उसी समय उन्होंने संस्कृत और पाली धार्मिक साहित्य के साथ–साथ पश्चिम धार्मिक कार्यों का भी अध्ययन किया। उन्होंने म्यूजियम ऑफ फाइन आर्ट्स के लिए कैटलॉग लिखा और 1927 में भारतीय एंड इंडोनेशियाई आर्ट के अपने इतिहास को प्रकाशित किया।

1930 में इस जोड़े के तलाक के बाद, वे दोस्त बने रहे। इसके तुरन्त बाद 18 नवंबर, 1930 को, कुमारस्वामी ने अर्जेटीना की लुइसा रनस्टीन से जो कि 28 साल छोटी थी, शादी की, जो पेशेवर नाम Xlata Llamas के तहत् एक सामाजिक फोटोग्राफर के रूप में काम कर रही थी। उनका एक बेटा, कुमारस्वामी का तीसरा बच्चा, राम पोन्नम्बलम (1929–2006) था, जो एक चिकित्सक बन गया और 22 साल की उम्र में रोमन कैथोलिक धर्म अपना लिया। वेटिकन II का अनुसरण करते हुए राम कैथोलिक परंपरावादी कार्यों के लेखक और सुधारों के आलोचक बन गए। उन्हें एक परंपरावादी रोमन कैथोलिक पादरी भी ठहराया गया था, इस तथ्य के बावजूद कि वह विवाहित थे और उनकी एक जीवित पत्नी थी।

प्रोफेसर राम ने हिन्दी और संस्कृत सीखते हुए इंग्लैंड और फिर भारत में अध्ययन किया। संयुक्त राज्य अमेरिका में एक मनोचिकित्सक बन गया, वह पोप जॉन पॉल II का विरोध करते थे और कलकत्ता की मदर टेरेसा के एक व्यापक संवाददाता बने रहे।

1933 में कुमारस्वामी की उपाधि म्यूजियम ऑफ फाइन आर्ट्स के क्यूरेटर से बदलकर, भारतीय, फारसी तथा मोहम्मदन आर्ट के 'शोध फेलो' के रूप में की गई।

उन्होंने 1947 में मैसाचुसेट्स के नीडम में अपनी मृत्यु तक ललित कला संग्रहालय में क्यूरेटर के रूप में कार्य किया। अपने लंबे करियर के दौरान, उन्होंने पूर्वी कला को पश्चिम में लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वास्तव में, ललित कला संग्रहालय में रहते हुए, उन्होंने संयुक्त राज्य में भारतीय कला का पहला पर्याप्त संग्रह बनाया।

उन्होंने वाशिंगटन डी0सी0 ललित कला संग्रहालय तथा फ्रीर गैलरी ऑफ आर्ट में फारसी कला के संग्रह में मदद की।

कुमारस्वामी की मृत्यु के बाद, उनकी विधवा, Dona Lusia Runstein, ने उनके छात्रों के लिए एक मार्गदर्शक और स्त्रोत के रूप में काम किया।

14.3 कला एवं शिक्षा के क्षेत्र में योगदान (Contribution in the Field of Art &

Education)

कुमारस्वामी ने कला, साहित्य और धर्म के दर्शन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सीलोन में, उन्होंने विलियम मोरिस के पाठों को सीलोनी संस्कृति पर लागू किया और अपनी पत्नी एथेल के साथ, सीलोनियों के शिल्प और संस्कृति का एक शानदार अध्ययन किया। भारत में रहते हुए, वह रवींद्रनाथ टैगोर के आसपास साहित्यिक सर्कल का हिस्सा थे और उन्होंने "स्वदेशी" आंदोलन में योगदान दिया, जो भारतीय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष का एक प्रारंभिक चरण था। 1920 के दशक में, उन्होंने भारतीय कला के इतिहास में अग्रणी खोज की, विशेष रूप से राजपूत और मुगल पेंटिंग के बीच के अन्तर और अपनी पुस्तक 'राजपूत पेंटिंग प्रकाशित की। उसी समय उन्होंने राजपूत और मुगल चित्रों के एक बेजोड़ संग्रह को एकत्र किया, जिसे वे अपने साथ ललित कला संग्रहालय बोस्टन ले गए, जहाँ वे 1917 में इसके क्यूरेटोरियल स्टाफ में शामिल हुए थे। 1932 में बोस्टन में अपने ठिकाने से उन्होंने दो प्रकार के प्रकाशन किए :– उनके क्यूरेटोरियल क्षेत्र में शानदार ज्ञान और भारतीय और एशियाई कला और संस्कृति का सुन्दर परिचय जो 'द डांस ऑफ शिव' निबंधों को संग्रह के रूप में आज भी प्रिंट में बना हुआ है। रेने गुयोन से प्रभावित, वह परंपरावादी स्कूल के संस्थापकों में से एक बन गये। कला और संस्कृति, प्रतीकात्मकता और तत्वमीमांसा, शास्त्र, लोककथाओं और मिथक और भी अन्य विषयों पर उनकी किताबें और निबंध पाठकों को एक उल्लेखनीय शिक्षा प्रदान करते हैं। पाठक उनके संपूर्ण अंतर–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य की चुनौतियों को स्वीकार करते हैं और उनकी कई परंपराओं के स्त्रोत हर बात को मानने को बाध्य करते हैं। उन्होंने एक बार टिप्पणी की, "मैं वास्तव में पूर्वी और ईसाई दोनों परिप्रेक्ष्य में सोचता हूँ – ग्रीक, लैटिन, संस्कृत, पाली और कुछ हद तक फारसी और चीनी।" इस अवधि के दौरान गहरे और अंतिम रूप से कठिन लेखन के साथ–साथ उन्होंने एक बड़े दर्शक वर्ग के लिए विवादास्पद लेखन भी सृजित किया – जैसे "कला का प्रदर्शन क्यों?"

14.3.1 कुमारस्वामी की कार्यशैली (विधि) :– कुमारस्वामी को तुलनात्मक विधि में एक दृढ़ विश्वास था। विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों और समय अवधि के दौरान ग्रंथों और प्रतीको दोनों के उनके सावधानीपूर्ण विश्लेषण में उन्हें परंपरा की आधारशिला का पता लगाने के लिए स्थानीय विश्लेषण और धार्मिक विशिष्टता की सतह से नीचे तक पता लगाने में मदद किया। परंपरा से उनका तात्पर्य उन स्मृतियों से था जो समय के साथ संजोया गया हो।

लोगों ने बिना समझ के पुरानी परंपराओं के अवशेष जो कभी–कभी अनिश्चित काल के अतीत से चले आए हैं, जिसे हम केवल "प्रागैतिहासिक" के रूप में संदर्भित कर सकते हैं, को संजोकर रखा है। यदि लोक मान्यताओं को वास्तव में समझा नहीं गया होता तो हम अब उन्हें आध्यात्मिक रूप से समझने योग्य नहीं कह सकते हैं, या उनके सृजन की सटीकता की व्याख्या नहीं कर सकते हैं।

प्राचीन भाषाओं के बारे में अनेक व्यापक ज्ञान ने उन्हें प्राथमिक स्त्रोंतों तक पहुँचने में मदद की और तत्वमीमांस की उनकी समझ ने उन्हें गहरे अर्थों को समझने में मदद की जिसे दूसरे विद्वानों ने नजरअंदाज किया। पश्चिम शैक्षणिक परंपरा का हिस्सा रहे ज्ञान के विशेषज्ञता और खंडीकरण को देखते हुए, उनके प्रयासों

को हमेशा सराहा नहीं गया। उन्होंने ग्राहम कैरी को लिखे पत्र में अपनी कुछ भावनाओं को व्यक्त किया।

धर्मनिरपेक्ष मन क्या करता है, यह दावा करने के लिए कि हम (प्रतीकवादी) उन चीजों में अर्थ पढ़ रहे हैं जो मूल रूप से है ही नहीं। हमारे विवाद का प्रमाण उस परिपाटी की पूर्णता, एकसारता और सार्वभौमिकता में निहित है जिसमें ये अर्थ समाहित हैं। अकादमिक जगत की उनकी आलोचना कई संबंधित मुद्दों पर केन्द्रित थी। सबसे पहले, अकादमिक विधि, लिखित दस्तावेज पर अधिक निर्भरता के कारण गैर–साक्षर संस्कृतियों में विचारों को प्रसारित करने के तरीके से निपटने के लिए तैयार नहीं थी, जिससे बहुत कुछ छूट गया था। "लोककथाओं" से हमारा तात्पर्य संस्कृति के पूर्ण तथा सुसंगत गठन से है, जो किताबों में नहीं, बल्कि मौखिक और व्यवहारिक है जो कि ऐतिहासिक शोध की पहुँच से परे, किंवदंतियों, परियों की कहानियों, गाथागीतों, खेल, खेलौने, शिल्प, चिकित्सा, कृषि और अन्य संस्कार और सामाजिक संगठन के रूप, विशेष रूप से जिन्हें हम "आदिवासी" कहते हैं, के रूप में है। यह राष्ट्रीय और यहां तक कि नस्लीय सीमाओं से स्वतंत्र एक सांस्कृतिक सम्मिश्रण है और जिसकी दुनिया भर में उल्लेखनीय समानता है। विविदा का एक दूसरा बिंदु शैक्षणिक संगठनात्मक और मानसिक संरचनाओं में फिट होने के लिए संस्कृतियों, धर्मों और समय अवधि को असतत श्रेणियों में विभाजित करने के लिए पश्चिमी ज्ञान की जुनूनी प्रवृत्ति थी।

यह भी उतना ही आश्चर्यजनक है कि बहुत सारे विद्वान किसी दिए गये संदर्भ में कुछ सार्वभौमिक सिद्धांतों को देखते हैं, इसलिए अक्सर इसे एक स्थानीय विशिष्टता मानते हैं।

एक परंपरावादी के रूप में कुमारस्वामी ने संस्कृति की निरंतरता पर जोर दिया। वह ऐतिहासिक बदलाव के बारे में अच्छी तरह से जानते थे लेकिन उन्होंने महसूस किया कि परिवर्तन और प्रगति पर जोर दिए जाने से बहुत सी कड़ियां खो चुके थे। एक नए धर्म और एक पुराने के बीच संघर्ष अक्सर उन्हें जोड़ने वाली सामान्यताओं को अस्पष्ट करता है।

लोकगीतों और धर्म का विरोध अक्सर एक प्रकर की प्रतिद्वंदिता के रूप में स्थापित होता है, जो एक नई परंपरा और पुरानी परंपरा के बीच होता है, पुराने पंथ के देवता नए पथ की बुरी आत्मा बन जाते हैं।

उन्होंने बताया कि ग्रीक शब्द डेमोंन, जो मूल रूप से दी गई किसी चीज को इंगित करता है, ईसाई पवित्र आत्मा, भगवान के जीवन उपहार का पर्याय था। यदि ईसाई प्रचारकों ने डेमोन की कीमत पर राक्षसी पर जोर देना चुना, तो यह केवल उनके अपने स्वयं के बात–विचार को आगे बढ़ाने के लिए था। इस तरह के विचार अन्य विद्वानों को सही नहीं लगता था। उनके लेखन में उनके काम के प्रति नाराज प्रतिक्रियाओं को उन्होंने पांडित्य, चातुर्य और हास्य के संयोजन के साथ सामना किया था।

एक तीसरा मुद्दा जिसने उनके क्रोध को बढ़ाया वह था पश्चिमी दुनिया की आलोचना में निहित जातिवाद और पारंपरिक और आदिवासी संस्कृतियों की गलत व्याख्या, साक्षरता और प्रगति के परिचारक विचारधारा के साथ बंधे दृष्टिकोण।

अरस्तू के लिए, इस आधार से शुरू करना संभव था कि एक आदमी, वास्तव में सुसंस्कृत होकर, साक्षर

भी हो सकता है, क्या संस्कृति के साथ साक्षरता का एक जरूरी या आकस्मिक मात्र संबंध है। ऐसा प्रश्न शायद ही उन लोगों के लिए उत्पन्न हो सकता है जिनके लिए निरक्षरता का तात्पर्य है, निःसंदेह, अज्ञानता, पिछड़ापन, स्वशासन के लिए अयोग्यता आपके लिए अनपढ़ लोग असभ्य लोग हैं या असभ्य लोग अनपढ़ – जैसा कि हाल ही में एक प्रकाशन के विज्ञापन ने व्यक्त किया है।"सभ्यता में सबसे बड़ी ताकत साक्षर लोगों का सामूहिक ज्ञान है।"

फ्रांज बोस और कुछेक अन्य लोगों की तरह, कुमारस्वामी ने प्रेस और अकादमिक दुनिया के मदद से नस्लवाद के खिलाफ लगातार युद्ध किया। वह भारतीय स्वतंत्रता के एक मजबूत वकील थे और उन पर सार्वजनिक रूप से यह सुझाव देने के लिए कि भारतीय लोग प्रथम विश्व युद्ध में नहीं लड़े इंग्लैंड छोड़ने का दबाव डाला गया था।

रेने गुएनोन और अन्य लोगों के विपरित, जिन्होंने अपनी काफी सारी समझ को साझा किया, वह पारंपरिक विचारों के मूल वर्णन करने के लिए सिर्फ तत्वाममांसा से संतुष्ट नहीं थे। पश्चिमी बौद्धिक परंपरा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता गहरी थी। उन्होंने यह नहीं माना कि विज्ञान और तत्वमीमांसा आपस में विरोधी थे, बल्कि दुनिया को देखने के दो अलग–अलग तरीके थे। वह एक भूविज्ञानी के रूप में प्रशिक्षित थे और वे विज्ञान के साथ–साथ तत्वमीमांसा से निपटने के लिए भी सुसज्जित थे।

उनका काम अत्यधिक सरलीकरण और विकृतियों से ग्रस्त नहीं था जो तुलनात्मक अध्ययन को प्रभावित कर सकते थे। वह कार्ल जंग के लेखन तथा ब्रहमविद्या के किन्तु आलोचक थे तथा मानते थे कि वे पारंपरिक विचारों के अर्थ को विकृत करते हैं। अपने तर्कों के समर्थन में उन्होंने जो विवरण दिया, वह सबसे निपूर्ण विद्वान को भी दंग कर सकता है; उनके पाठ्–लेख कभी मुख्य पाठ की तुलना में पृष्ठ पर अधिक जगह लेते थे। तुलनात्मक विधि ने भाषा विज्ञान में अच्छी सफलता प्राप्त की है, लेकिन संस्कृति पर इसका प्रयोग आनंद कुमारस्वामी से पहले शायद ही कभी दस्तावेजीकरण से परे गया हो।

14.3.2. कुमारस्वामी का पारंपरिक प्रतीकवाद :– कुमारस्वामी के सबसे महत्वपूर्ण योगदानों में से एक इस बात पर उनकी गहन समझ थी कि लोगों ने शुरूआती समय में कैसे संवाद किया और लेखन के अभाव में उनके विचारों को कैसे प्रसारित ओर संरक्षित किया गया। उन्होंने महसूस किया कि पारंपरिक प्रतीकों को चित्रों के माध्यम से सबसे अच्छा समझा जा सकता है, जो लेखन से पहले आए और जिसमें ऐसे विचार शामिल थे जिन्हें शुरूआती समय से ही एक विशाल सरणी में संरक्षित किया गया तथा प्रेषित किया गया। छवियों में सोचने की कला खो देना सटीक रूप से तत्वमीमांसा के भाषा को खो देना है और "दर्शन के मौखिक तर्क मात्र रह गया है। पारंपरिक प्रतीकों के उनके अध्ययन ने उन्हें यह सिखाया था कि प्रतीक विचारों को व्यक्त करने के लिए थे न कि भावनाओं को व्यक्त करने के लिए और यह कि 'शैलियों' और 'प्रभावों' के अध्ययन से बहुत कम महत्व का पता चलता है।

धर्मशास्त्र और ब्रह्माण्ड विज्ञान का पर्याप्त ज्ञान कला के इतिहास की समझ के लिए अपरिहार्य है। कला के कार्यों के वास्तविक आकार और संरचना का निर्धारक वास्तविक तत्व है। उदाहरण के लिए, ईसाई कला, अमूर्त

प्रतीकों द्वारा देवता के प्रतिनिधित्व के साथ शुरू होती है, जो ज्योमितीय, साग–सब्जी या जन्तुरूप में हो सकती है और जो किसी प्रकार के भावुकता से रहित है। एक मानवरूपी प्रतीक है, लेकिन यह अभी भी एक रूप है और न कि एक आकृति यह जैविक रूप से कार्य करने के लिए या शारीरिक रचना या नाटकीय अभिव्यक्ति की पाठ्य पुस्तक का वर्णन करने के लिए नहीं बनाया गया है। बाद में इस रूप को भावुकता प्राप्त हो जाती है। इसका प्रकार पूरी तरह से मानवीय है जहां हम ईश्वर के विचार के अनुरूप प्रतिनिधित्व के रूप में मानवता के आकार के साथ शुरू करते हैं वहीं कलाकार की मालकिन के चित्र के रूप के साथ अंत करते हैं जो मैडोना के रूप में प्रस्तुत होती है और एक पूर्ण मानव बच्चे का प्रतिनिधित्व होता है। मसीह अब मनुष्य–ईश्वर नहीं है, बल्कि वैसा जिस प्रकार का मनुष्य हम स्वीकार कर सकते हैं।

अपने परंपरावादी रूख को ध्यान में रखने हुए, उन्होंने इस प्रक्रिया को एक क्रमिक क्षय के रूप में देखा, जिसमें मानव जीवन दुनिया में भावुकता और अर्थ के बिना धीरे–धीरे परमात्मा का अतिक्रमण करना शुरू कर देता है। वह क्यूरेटर, जॉन लॉज के उद्धत करने के शौकीन थे। "पाषाण युग से अब तक, निरंतर ह्रास" कुमारस्वामी ने अपने समय के बहुत से विषयों और चित्रों का दस्तावेजीकरण किया, जो बहुत पुराने प्रतीत होते। अध्ययन के प्रमुख क्षेत्रों में शामिल हैं;

- सौर प्रतीक
- पहिए का प्रतीक
- बाढ़ की कहानी
- जल ब्रह्मांडशास्त्र और पौधों के प्रकार
- सोम और जीवन का जल
- पारंपरिक ब्रह्मांड विज्ञान (तीन दुनिया)
- सांप और सरीसृप का प्रतीक आदि।

14.3.3. कुमारस्वामी का शाश्वत दर्शन :– उन्हें हेनरिक जिमर द्वारा "उस महान विद्वान के रूप में वर्णित किया गया था जिसके कंधों पर हम अभी भी खड़े हैं।" अपने जीवन के उत्तरार्ध में बोस्टन म्यूजियम ऑफ फाइन आर्ट्स के क्यूरेटर के रूप में सेवा करते हुए, उन्होंने अपने कार्य को पारंपरिक तत्वमीमांसा और प्रतीकवाद के विश्लेषण के लिए समर्पित किया। इस अवधि का उनका लेखन प्लेटो, प्लोटिनस, क्लेमेंट, फिलो, ऑगस्टीन, एक्विनास, शंकरा, एकहार्ट, रूमी और अन्य मनीषियों के संदर्भ से भरे हुए हैं। उनके अनुसार वह एक 'तत्वज्ञानी' थे।

Rene Guenon और Frithjof Schuon के साथ, कुमारस्वामी को शाश्वतवाद के तीन संस्थापकों में से एक के रूप में माना जाता है, जिसे परंपरावादी स्कूल भी कहा जाता है। हिन्दू धर्म और शाश्वत दर्शन के विषय पर कुमारस्वामी द्वारा कई लेख मरणोपरांत त्रैमासिक पत्रिका 'तुलनात्मक धर्म का अध्ययन' में अन्य लोगों के अलावा श्यूऑन और गयोन के लेखों के साथ प्रकाशित किए गए थे।

यद्यपि वह सार्वभौमिक सिद्धांतों पर गुओन के साथ सहमत हैं, लेकिन कुमारस्वामी का काम बहुत अलग रूप में है। पेशे से वह एक ऐसे विद्वान थे जिसने अपने जीवन के अंतिम दशको को 'शास्त्रों की खोज' के लिए समर्पित किया। वह उस परंपरा पर एक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं जो गुयेन का पूरक है। वह सौंदर्यशास्त्र के लिए अत्यंत अवधारणात्मक थे और उन्होंने पारंपरिक कला और पौराणिक कथाओं पर दर्जनों लेख लिखा। उनकी रचनाएँ बौद्धिक रूप से भी संतुलित हैं। यद्यपि हिंदू परंपरा में पैदा हुए, उन्हें पश्चिमी परंपरा के साथ–साथ ग्रीक तत्वमीमांसा, विशेषकर प्लॉटिनस, जो नियोप्लाटनवाद के संस्थापक थे, के लिए एक महान विशेषज्ञता के साथ–साथ एक गहन ज्ञान तथा लगाव था।

कुमारस्वामी ने पूर्व और पश्चिम के बीच एक पुल का निर्माण किया जा दो–तरफा होने के लिए डिजाइन किया गया था; अन्य बातों के अलावा, उनके आध्यात्मिक लेखों का उद्देश्य वेदांत और प्लौटोमवाद की एकता को प्रदर्शित करना था। उनके कार्यों ने मूल बौद्ध धर्म के पुनर्वास की भी मांग की।

14.4 सारांश(Summary)

आनन्द केंटिस मुथु कुमारस्वामी का जन्म 22 अगस्त 1877 को सिलोन में हुआ। कुमारस्वामी ने कला साहित्य और धर्म के दर्शन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1920 के दशक में उन्होंने भारतीय कला के इतिहास में अग्रणी खोज की, विकास रूप से राजपूत और मुगल पेंटिंग के बीच के अन्तर और अपनी पुस्तक 'राजपूत पेंटिंग' प्रकाशित की। एक परंपरावादी के रूप में कुमारस्वामी ने संस्कृति की निरंतरता पर जोर दिया। कुमारस्वामी के सबसे महत्वपूर्ण योगदानों में से एक इस बात पर उनकी गहन समझ थी कि लोगों ने शुरूआती समय में कैसे संवाद किया और लेखन के अभाव में उनके विचारों को कैसे प्रसारित और संरक्षित किया गया। उन्होंने महसूस किया कि पारंपरिक प्रतीकों को चित्रों के माध्यम से सबसे अच्छा समझ जा सकता है।

14.5 अभ्यास के प्रश्न (Question of Exercise)

1. कुमारस्वामी के जीवन परिचय पर प्रकाश डालें।
   Throw light on Coomaraswamy's life.
2. कला एवं शिक्षा के क्षेत्र में कुमारस्वामी के योगदान पर प्रकाश डालें।
   Throw light on contribution of Coomaraswamy in the field of Art & Education.

14.6 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. अग्रवाल पब्लिकेशन, नाट्यकला और शिक्षा रीता चौहान।
2. अग्रवाल पब्लिकेशनः कला शिक्षा, स्नेहलता चर्तुवेदी।
3. विनोद पुस्तक मंदिरः शिक्षा में नाटक एवं कला, प्रो0 (डॉ0) चित्रलेखा सिंह।
4. प्रकाशन विभागः भारतीय कला और कलाकार, ई कुमारिल स्वामी।

❒ ❒ ❒